एस.सी.ई.आर.टी., बिहार
द्वारा विकसित

S4

दो वर्षीय सेवापूर्व डिप्लोमा इन एलिमेन्ट्री एजुकेशन

स्वयं की समझ

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (एस.सी.ई.आर.टी.),
महेन्द्रू, पटना, बिहार

पाठ्य पुस्तक विकास समूह

पत्र–S-4

(स्वयं की समझ)

दिशाबोध	श्री दीपक कुमार सिंह, भा.प्र.से., अपर मुख्य सचिव, शिक्षा विभाग, बिहार, पटना श्री सज्जन राजसेकर, भा.प्र.से., निदेशक, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, महेन्द्रू, बिहार, पटना डॉ० एस.पी.सिन्हा, सलाहकार, शिक्षा विभाग, बिहार, पटना
समन्वयक	श्रीमती आभा रानी, प्रतिनियुक्त व्याख्याता, एस.सी.ई.आर.टी, पटना
लेखक समूह	डॉ० सोनम कुमारी, प्रभारी प्राचार्य, डायट, टीकापट्टी, कटिहार
	डॉ० शिशुपाल सिंह, व्याख्याता, डायट, सीवान
	डॉ० दीपक कुमार, प्रभारी प्राचार्य, पी.टी.ई.सी. नगरपारा, भागलपुर
	श्री शरद जैन, प्रभारी प्राचार्य, पी.टी.ई.सी., हवेली खड़गपुर मुंगेर
	डॉ० औंकारनाथ मिश्र, व्याख्याता, डायट, सिवान
समीक्षक	डॉ० लव कुमार, प्रतिनियुक्त व्याख्याता, एस.सी.ई.आर.टी, पटना
	डॉ० एहतेशाम अनवर, वरीय व्याख्याता, सी.टी.ई. तुर्की, मुजफ्फरपुर
भाषा समीक्षक	श्री अविनाश चन्द्र ठाकुर, व्याख्याता, पी०टी०ई०सी० हवेली खड़गपुर, मुंगेर

पाठ–सूची

इकाई	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
1	एक व्यक्ति के रूप में स्वयं को समझना	4-23
2	अपनी अस्मिता के प्रति सजगता	24-39
3	अपने कार्यों तथा जीवन उद्देश्यों की समझ	40-47
4	संदर्भ सूची	48

इकाई–1

विषय वस्तु

- परिचय
- व्यक्तित्व का संप्रत्यय
- स्व का संप्रत्यय
- स्व एवं व्यक्तित्व
- 'मै कौन हूँ'
- सेल्फ बनाम इगो
- अस्मिता की अवधारणा
- अस्मिता के पहलू
- सामाजिक पहलू, राजनीतिक पहलू, आर्थिक पहलू, सांस्कृतिक पहलू
- सेल्फ पोट्रेट
- आत्म–अभिव्यक्ति, स्वीकार्यता, स्वाभिमान, आत्मविश्वास, आत्म–अभिप्रेरणा
- प्रोफाईल बनाना

परिचय

इस विद्यमान जगत में अनेकों जीव एवं अजीवों में से आपने अपने आपको स्वत: अपने बारे में और दूसरों के व्यवहार के बारे में जानने एवं परखने में अपनी रूचि प्रकट की होगी। आपने देखा होगा कि प्रत्येक जीव अपने अस्तित्व को बनाये रखते हुए अपने आपका विकास करता है। इस संसार में मनुष्य ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना है। जिसके अन्दर चिन्तन मनन एवं विवेक जैसी शक्तियाँ मौजूद होती है जो मानव को इस संसार के अन्य जीवों से अलग करती है। मानव के मूल्यांकन का मुख्य केन्द्र स्व, स्वयं हैं।

स्व स्वयं व्यक्तितत्व न केवल यह समझने में कि 'मैं कौन हूँ' बल्कि दूसरों से भिन्नता एवं समानता को भी दर्शाता है। स्व की व्याख्या विभिन्न वैचारिक क्षेत्रों में दार्शनिकों एवं मनोवैज्ञानिकों ने अलग-अलग तरीके से की है।

व्यक्तितत्व

प्रत्येक व्यक्ति में कुछ विशेष गुण या विशेषताएँ होती हैं, जो अन्य दूसरे व्यक्तियों में नहीं होती है। इन्हीं गुणों एवं विशेषताओं के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति आपस में एक-दूसरे से भिन्नता रखते हैं। इन्हीं गुणों एवं विशेषताओं के समुच्चय को व्यक्तितत्व कहा जाता है।

व्यक्तितत्व की परिभाषाएँ

1. व्यक्तितत्व गुणों का समन्वित रूप है - गिलफोर्ड
2. व्यक्ति के व्यवहार की एक समग्र विशेषता ही व्यक्तितत्व है - वुडवर्थ
3. व्यक्तितत्व का सम्बन्ध मनुष्य की उन शारीरिक तथा आन्तरिक वृत्तियों से है, जिनके आधार पर व्यक्ति अपने वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करता है - ऑलपोर्ट

अत: व्यक्तितत्व व्यक्ति की विशेष विशेषता है जो उसे अन्य से अलग करती है। व्यक्ति का व्यक्तितत्व आदिकाल से ही खोजी प्रवृत्ति का रहा है। मनुष्य सदैव से ही क्या है? कौन है? कब है? कैसे है? के उत्तर खोजने में लगा रहा है। मनुष्य की मुख्यत: दो जिज्ञासा हमेशा से ही रही है। एक भौतिक ज्ञान में वृद्धि करना तथा दूसरी स्वयं के ज्ञान में वृद्धि करना। मनुष्य जितना दूसरों के बारे में जानना चाहता है, उतना ही अपने बारे में भी जानना चाहता है। वह यह भी जानना चाहता है कि दूसरे मनुष्य क्या हैं और 'मैं कौन हूँ'। वह अपने बारे में अंत:दर्शन (Introspection) विधि के द्वारा अच्छे से जान सकता है। अपने बारे में जानने के लिए मनुष्य को हमेशा अपने व्यक्तितत्व का खुद से विश्लेषण करना चाहिए। जिससे उसे अपने बारे में यह

पता चल सके कि वह अन्य लोगों से कैसे भिन्न है एवं वह अपने आपको वातावरण में कैसे समायोजित करता है।

स्वयं

धीरे-धीरे अनुभव प्राप्त करके प्रासंगिक क्षेत्र का एक भाग जब अधिक विशिष्ट हो जाता है, तब हम उसे स्व की संज्ञा देते हैं। उदाहरण - शरीर की रचना में कोशिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। इन कोशिकाओं से मिलकर ही मनुष्य या किसी जीव का शरीर बनता है। शरीर की रचना की प्रक्रिया में कोशिका प्रासंगिक क्षेत्र का एक विशिष्ट भाग हो जाता है। कोशिका का अपने आप में विशिष्ट होना ही स्व की अवधारणा है। अतः व्यक्ति अपने बारे में जो सोचता है या अपनी जो धारणा विकसित करता है उसे ही स्व की अवधारणा कहते हैं।

रोजर्स के अनुसार स्व दो प्रकार का होता है - एक वास्तविक स्व एवं दूसरा आदर्शात्मक स्व। वास्तविक स्व वह स्व है कि व्यक्ति अपने बारे में क्या सोचता है, जैसे - 'मैं कौन हूँ?' एवं मेरे अन्दर क्या-क्या गुण है?, एवं क्या-क्या विशेषताएँ हैं? वही आदर्शात्मक स्व वह स्व है जो मनुष्य के भविष्य की ओर संकेत देता है कि मनुष्य कैसा होना चाहता है। उदाहरण - विहान प्रशिक्षु अपने सभी अध्यापक/अध्यापिकाओं का सम्मान करता है और यह सोचता है कि मेरे अन्दर वह कौन-कौन से सद्‌गुण है जो मेरे अध्यापकों में है। मैं भी एक अच्छा अध्यापक बनना चाहता हूँ।

दार्शनिक विचारधारा के अनुसार स्व के बारे में महत्वपूर्ण पक्ष मनुष्य का अपना अस्तित्ववादी दृष्टिकोण है। बहुत सारे दार्शनिकों एवं मनोवैज्ञानिकों ने स्व के बारे में अपने महत्वपूर्ण विचार दिए हैं।

- मैं सोचता हूँ इसलिए मैं हूँ - रेने डेकार्ट
- मेरे स्व के बारे में जानने से मेरी सत्ता स्वयं ही सिद्ध होती है- कम्पानेला
- स्वयं को जानिए - सुकरात
- व्यक्ति का सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन से ऊपर उसका अपना स्व है- सुकरात
- स्व से तात्पर्य भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक स्व के सामंजस्य से है - विलियम जेम्स
- सामाजिक स्व से तात्पर्य सामाजिक न्याय प्रणाली को विकसित करना है- जॉन डी.वी.
- योग दर्शन में योग के माध्यम से पुरूष स्वयं को चित्त रूप में अनुभव करने लगता है।

- यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्। ऋणम् कृत्वा धृतं पिवेत् – चार्वाक दर्शन।

उपरोक्त के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि स्व अपने बारे में चित्र/सेल्फ पोट्रेट प्रस्तुत करना है, जो व्यक्ति की स्वयं के बारे में विश्लेषण करने का मार्ग प्रशस्त करता है और 'मैं कौन हूँ?' को समझने में सहायता करता है।

सेल्फ बनाम ईगो

सेल्फ तथा ईगो में विभिन्नताओं की तुलना में समानताएं अधिक है। हमारा सामान्य अनुभव दोनों के अन्तर को स्पष्ट नहीं कर पाता है। इसलिए सेल्फ कब ईगो में परिवर्तित हो जाता है और ईगो कब सेल्फ में परिवर्तित हो जाता है, यह आत्म–निरीक्षण के पश्चात ही जाना जा सकता है। विलियम जेम्स के अनुसार – ''स्व से तात्पर्य भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक स्व के सामंजस्य से है।''

सिगमंड फ्रायड के अनुसार – ''अहम इड से विकसित होता है और यह सुनिश्चित करता है कि इड (Id) के आवेगों को वास्तविक दुनिया में स्वीकार्य तरीके से व्यक्त किया जा सके।''

सेल्फ का मतलब अभिमान का न होना है। फ्रायड के अनुसार इड (Id) बालक की जन्मजात प्रवृत्ति होती है। जो सुख के सिद्धांत पर कार्य करती है। इड (Id) की पूर्ति न होने पर ईगों का जन्म होता है। ईगो को नियमानुसार संतुष्ट करना सुपर ईगो को जन्म देता है। अतः ईगो इड (Id) एवं सुपर ईगों के मध्य पुल का कार्य करता है।

इड (Id)	–सुख का सिद्धांत
ईगो (Ego)	–वास्तविकता का सिद्धांत
सुपर ईगो (Super Ego)	–नैतिकता का सिद्धांत

इड (Id) वो मूल प्रवृत्तियां है। जिनकी पूर्ति न होने पर ईगो उत्पन्न होता है। ईगो का नैतिक रूप सुपर ईगो होता है। जो किसी भी व्यक्ति के व्यक्तितत्व में सन्तुलन बनाये रखने में मुख्य भूमिका निभाता है।

अस्मिता की अवधारणा

हम जिस समाज, परिवेश में रहते हैं; उसके अनुसार हमारी आदतें, विचार, व्यवहार, मूल्य, विश्वास इत्यादि निर्मित होते जाते हैं। एक कर्तव्य के रूप में हमें कुछ भूमिकाओं का सतत् निर्वहन करते रहना भी होता है और तद्नुरूप अपनी पेशेवर क्रियाकलापों के जरिये स्वयं को

अभिव्यक्त करते हैं। उदाहरणस्वरूप आप अभी एक शिक्षक-प्रशिक्षु के रूप में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं, कोई किसान के रूप में खेतों में, विद्यार्थी के रूप में कक्षाओं में, चिकित्सक के रूप में चिकित्सालयों में अपनी-अपनी भूमिकाओं का निर्वहन कर रहे हैं। आगे चलकर हम समाज के एक सदस्य के रूप में स्वयं में भी एवं साथ-ही अन्य व्यक्तियों के द्वारा अपनी-अपनी भूमिकाओं के जरिये ही जाने जाते हैं और कालान्तर में हमें अपनी विशिष्ट क्रिया-कलापों के लिए विशेष संज्ञा रूप यथा – शिक्षक-प्रशिक्षु, किसान, विद्यार्थी, चिकित्सक इत्यादि से नवाजा जाने लगता है। मनोविज्ञान के अनुसार इसे आइडेंटिटी या अस्मिता कहा जाता है जो हमारी विशिष्टताओं को प्रकट करते हैं अथवा जिस तरह से हम खुद को अभिव्यक्त कर रहे होते हैं।

हिन्दी का 'अस्मिता' शब्द अंग्रेजी 'आइडेंटीटी' का ही रूपान्तरण है, जो मनोवैज्ञानिक एरिक्सन द्वारा 1950 के दशक में किये गये कार्यों से प्रकाश में आया। हालाँकि 'अस्मिता' शब्द की परिभाषा वर्तमान दैनिक प्रचलित अर्थों एवं सामाजिक विज्ञान के संदर्भों से पर्याप्त मेल नहीं खाती है। 'आइडेंटिटी' को विद्वानों ने कुछ इस तरह समझने का प्रयास किया है:-

1. ''अस्मिता व्यक्तियों की यह अवधारणा है कि वे कौन हैं, वे किस तरह के लोग हैं तथा अन्य व्यक्तियों से किस प्रकार से सम्बन्धित हैं''। (हॉग एवं एब्रैम, 1988)
2. ''अस्मिता का संबंध उन तौर-तरीकों से है जिनमें व्यक्तियों और समूहों का सामाजिक संबंध एक-दूसरे व्यक्तियों और समूहों से अलग करता है''। (जेनमिन्स, 1996)
3. ''अस्मिता स्वयं के प्रति अपेक्षाकृत स्थायी, भूमिका-विशेष, समान अपेक्षायें हैं।'' (वेन्ट, 1992)

एरिक्सन (1951, 1968) ने अस्मिता के विकास का एक मॉडल विकसित किया। यह मॉडल निष्ठा एवं अन्वेषण के जरिये अस्मिता के विकास पर केन्द्रित था। एरिक एरिक्सन एक मनो-सामाजिक थे। हालाँकि जब भी विकास का यह सिद्धान्त मनोविश्लेषणवादी फ्रॉयड से प्रमाणित था। एरिक्सन यह विश्वास करते थे कि व्यक्तित्व का विकास सोपानों की एक श्रृंखला (series of stages) में होता है। एरिक्सन को यह जानने में रूचि थी कि सामाजिक अंत:क्रिया एवं संबंध मनुष्य के वृद्धि एवं विकास में किस प्रकार अपनी भूमिका अदा करते हैं। उनके विचार में विकास के प्रत्येक सोपान में व्यक्ति एक टकराव (Conflict) का अनुभव करता है और विकास में यह अहम् मोड़ होता है। उन्होंने किशोरावस्था (12-18 वर्ष) के काल को अस्मिता बनाम भूमिका विभ्रान्ति (Identity Vs Role Confusion) कहा है। यह अवस्था व्यक्तिगत अस्मिता के समझ के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है जो व्यक्ति के शेष जीवन के व्यवहार एवं विकास को प्रभावित करता रहता है। सफलता अपने आप को सच मानने की क्षमता की ओर ले

जाती है, जबकि असफलता से भूमिका भ्रम (role confusion) पैदा होता है और आत्मबल कमजोर होता है।

किशोरावस्था के दौरान बच्चे स्वतंत्रता का अन्वेषण करते हैं और स्वयं की समझ का विकास करते हैं। इस अवस्था में जो व्यक्तिगत अन्वेषण के जरिये समुचित प्रोत्साहन और सुदृढ़ीकरण प्राप्त करते हैं वे स्वयं की एक मजबूत समझ बनाते हैं और स्वतंत्रता एवं नियंत्रण महसूस करते हैं। जो लोग अपनी मान्यताओं और इच्छाओं के बारे में अनिश्चित रहते हैं वे अपने और भविष्य के बारे में असुरक्षित और भ्रमित महसूस करेंगे।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार 'अस्मिता' के अन्दर वे विश्वास, आदर्श और मूल्य समाहित होते हैं जो एक व्यक्ति के व्यवहार को आकारित एवं निर्देशित करते हैं। एरिक्सन ने 'इगो आइडेंटिटी' शब्द गढ़ा। 'इगो आइडेंटिटी' से अभिप्राय स्वयं के प्रति सचेतन समझ से है जो सामाजिक अंत:क्रिया के जरिये विकसित होता है। एरिक्सन के अनुसार 'इगो आइडेंटिटी' परिवर्तनशील होता है, क्योंकि हम अपने दैनिक जीवन में नित्य प्रति दूसरों से अंत:क्रिया के दौरान नयी सूचनाएँ एवं अनुभव हासिल करते हैं।

अस्मिता महत्वपूर्ण कैसे है?

हमारी व्यक्तिगत पहचान हमारे जीवनानुभवों को बतलाती है इससे हमें आपसी एकजुटता, परस्पर सहयोग, समझदारी जैसे मानवीय मूल्यों को साझा करने में मदद मिलती है साथ ही साथ एकता की भावना भी प्रचलित होती है। यह पहचान हमारे कार्यों, विश्वासों और व्यवहारों का मार्गदर्शन भी करती है।

हमारी अस्मिता का संबंध उन विशेषताओं एवं लक्षणों से होता है जिसके जरिये हमारी सामाजिक संबंध भूमिकाएँ, सामाजिक समूह की सदस्यता तय होती है और जो यह निर्धारित करता है कि मैं कौन हूँ। यह हमारे भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों को समाहित करता है यथा – मैं पूर्व में क्या था? वर्तमान में कैसा हूँ? और भविष्य में क्या होना चाहता हूँ? हमारी अस्मिता हमें उन्मुख बनाती है और तथ्यों के अर्थ ग्रहण करने हेतु दृष्टिकोण भी प्रदान करती है। जैसे आप अध्यापक-प्रशिक्षु हैं तो अध्ययनशील होना आपकी एक विशेषता है। आप भावी शिक्षक बनने को उन्मुख हैं। हालाँकि हमारी अस्मिता अपेक्षाकृत कम स्थिर एवं बहुआयामी होती है, जैसे – आपकी अध्ययनशीलता की वृत्ति में उतार चढ़ाव आते रहता है, हालाँकि यह लचीलापन कई बार हमारे लिए उपयोगी भी होती है। स्व एवं अस्मिता से संबंधित जो भी सिद्धान्त है वे मानते हैं कि लोग अपना ख्याल रखते हैं एवं स्वयं को जानने की जिज्ञासा रखते हैं और इस स्व-ज्ञान का संसार के बारे में अपनी समझ बनाने में उपयोग करते हैं।

अस्मिता के पहलू

'अस्मिता' का प्रयोग वर्तमान में दो रूपों में होता है:-

1. सामाजिक अस्मिता
2. व्यक्तिगत अस्मिता।

सामाजिक अस्मिता से हमारा तात्पर्य व्यक्ति का स्वयं के प्रति उस समझ से है जिसके जरिये वह अपने को समूह के एक सदस्य के रूप में समझता है। टफेल (1979) ने प्रस्तावित किया है कि वह समूह कोई सामाजिक वर्ग, परिवार, क्रिकेट टीम इत्यादि हो सकता है जिसमें शामिल होने पर गर्व की अनुभूति करता है।

व्यक्तिगत अस्मिता से हमारा आशय व्यक्ति के उस विशिष्ट अस्मिता से है जो समय के प्रवाह के बावजूद स्थिर रहता है। मतलब यह कि किसी व्यक्ति के बारे में कुछ आवश्यक एवं पर्याप्त दशाओं में यह कहा जाए कि यह वही व्यक्ति है जो उस समय था।

अमित कुछ समय पहले गाँव में रहता था। कॉलेज के दोस्त प्यार से देहाती कहते और जब गाँव जाता तो शहरी बाबू। घर में बच्चे पापा कहते तो बहन भईया बोलती। पढ़ाई पूरी करने के बाद अध्यापन के पेशे में आया और मास्टर साहब कहलाने लगा। बाद में ऊँची डिग्रियों की ख्वाहिश ने शोधार्थी बना डाला। फिर क्या था प्रोफेसर साहब भी कहलाने लगा। कॉलेज के परिभ्रमण के सिलसिले में जब दिल्ली पहुँचा तो बिहारी उपाधि से भी विभूषित हुआ। वहाँ एक सहकर्मी के सवाल से भी टकराया - 'क्या आप हिंदू हो?' एक दूसरे ने चुहल की, 'ऐ मगहिया देशी जुबान ही बोलो, मीठा लगता है!' तभी किसी कोने से आवाज आयी, 'अरे छोड़ो हम सब भारतीय हैं। काले-गोरे का भेद यहाँ नहीं चलता।' परंतु इन उपलब्धियों के बावजूद एकान्त में यह भी महसूस करता कि आज भी विद्यार्थी ही है। कुछ नहीं बदला फिर भी यह संतोष है। कि यह सकारात्मक प्रवृत्ति उसके पेशेवर विकास में सहायक ही सिद्ध हुआ है।

अस्मिता विकास के दो और महत्वपूर्ण पहलू हैं:-

1. आत्म-संप्रत्यय (self-concept)
2. आत्म-सम्मान (self-esteem)

'आत्म-संप्रत्यय' से हमारा अभिप्राय अपने व्यवहार, योग्यता और विशिष्ट विशेषताओं के बारे में व्यक्तिगत अवबोध से होता है। अपने ही भीतर अपने बारे में एक मानसिक छवि बनती है कि

एक व्यक्ति के रूप में मैं कौन हूँ? जैसे – मैं एक अच्छा अध्यापक हूँ। मैं अनुशासनप्रिय हूँ। स्वयं के बारे में हमारा यह विचार सतत् एवं स्थायित्व लिए होता है।

अस्तित्व निर्माण का दूसरा पहलू 'आत्म-सम्मान' है। मनोविज्ञान में 'आत्म-सम्मान' शब्द का उपयोग किसी व्यक्ति के आत्म-मूल्य या व्यक्गित मूल्य की समग्र भावना का वर्णन करने के लिए किया जाता है। दूसरे शब्दों में आप खुद को कितना सराहते हैं और पसंद करते हैं। इसमें स्वयं के बारे में विभिन्न प्रकार की मान्यताएँ यथा – स्वयं की विश्वास, भावनाएँ और व्यवहार शामिल है। इस प्रकार किसी व्यक्ति का आत्मसम्मान उसका आत्मगत मूल्यांकन ही है। जैसे मैं सौभाग्यशाली हूँ।

विकासवादी मनोविज्ञानियों ने अस्तित्व विकास के बहुत सारे आयामों पर शोध कार्य किया है। उनमें कुछ महत्त्वपूर्ण पहलू इस प्रकार हैः-

1. धार्मिक पहचान

व्यक्ति की एक पहचान उसकी धार्मिक आस्था से भी निर्धारित होती है। कुछ नास्तिक तो कुछ आस्तिक होते हैं। धार्मिक मान्यताओं एवं परंपराओं के अनुपालन के क्रम में वे कुछ खास विश्वासों एवं मूल्यों को भी धारण करते हैं और कालान्तर में यह उनकी पहचान भी बन जाती है। बहुत से बच्चे अपने माता-पिता की वेश-भूषा, विश्वासों एवं विचारों को अपना लेते हैं तो बहुत अस्वीकार भी कर देते हैं।

2. राजनैतिक पहचान

प्रत्येक व्यक्ति के कुछ राजनीतिक सरोकार होते हैं। वह राज्य की शासन प्रणाली, अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक होता है या उदासीन होता है अथवा किसी दल विशेष की मान्यता के प्रति उदार या अनुदार होता है और तदनुरूप एक राजनैतिक पहचान भी प्राप्त करता है। एक पेशेवर अध्यापक शिक्षक को लोकतांत्रिक मूल्यों को लेकर तटस्थ होना चाहिए एवं आलोचनात्मक मूल्यांकन के पश्चात् अपनी राजनैतिक राय कायम करनी चाहिए।

3. व्यवसायिक पहचान

प्रत्येक व्यक्ति अपनी आजीविका हेतु कुछ-न-कुछ व्यवसाय में संलग्न होता है और इस हेतु वह खास कौशलों को धारण करता है एवं तद्नुरूप अपनी व्यवसायिक पहचान हासिल करता है, जैसे – किसान, बढ़ई, लुहार, मैकेनिक, इत्यादि। हालाँकि व्यवसायिक पहचान चूँकि कौशलों पर आधारित है इस कारण इसके विकास में अधिक समय लगता है।

एक शिक्षक की व्यवसायिक पहचान उसके कार्य-कौशल एवं कार्य दक्षता से ही निर्धारित होती है।

4. नृजातीय (Ethnic) पहचान

व्यक्ति की नृजातीय पहचान उसके प्रजाति-विशेष से संबद्धता को सूचित करती है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी वंश-परम्परा में कुछ खास जैविकीय लक्षणों यथा - नाकों की आकृति, त्वचा का रंग, बालों के प्रकार, खोपड़ी की बनावट, कद, जैसी विशिष्ट बुनावट लिये होता है, जैसे - मंगोलाइड प्रजाति के लोग।

कुछ खास अपवादों को छोड़कर व्यक्ति की नृजातीय पहचान व्यक्ति के सकारात्मक मनोवैज्ञानिक परिणामों, मनोसामाजिक परिणामों (यथा - बेहतर आत्म-विश्वास, कम अवसादग्रस्तता लक्षण), शैक्षणिक परिणामों (जैसे - विद्यालयों में बेहतर जुड़ाव) के साथ सकारात्मक रूप से जुड़ा होता है।

5. लैंगिक पहचान (Identity)

जेण्डर आइडेंटिटी व्यक्ति के किसी खास जेण्डर, यथा - पुरूष, स्त्री अथवा ट्रांसजेण्डर होने का अवबोध है। ध्यान रहे 'जेण्डर' एक समाजशास्त्रीय संकल्पना है न कि जैविकीय, जो जेण्डर भूमिकाओं से गहन रूप से जुड़ा हुआ है। जेण्डर पहचान व्यक्ति के जन्म के समय नियत जेण्डर के साथ सम्बद्ध हो भी सकती है अथवा नहीं भी। आमतौर पर, किसी व्यक्ति का जेण्डर उसके जेण्डर पहचान को दर्शाती है लेकिन हमेशा ऐसा नहीं होता है। हालाँकि एक व्यक्ति एक विशेष जेण्डर भूमिका के अनुरूप व्यवहार, दृष्टिकोण एवं उपस्थिति व्यक्त कर सकता है परंतु जरूरी नहीं कि यह अभिव्यक्ति उसकी जेण्डर पहचान को प्रतिबिम्बित करे।

आमतौर पर, जेण्डर पहचान तीन वर्ष की उम्र तक बन जाती है। तीन साल के बाद इसमें बदलाव कठिन ही होता है।

6. सांस्कृतिक पहचान

सांस्कृतिक पहचान एक समूह से संबंधित है। यह एक व्यक्ति की आत्म-धारणा और आत्म-अवबोध का हिस्सा है जो राष्ट्रीयता, जातीयता, धर्म, सामाजिक वर्ग, पीढ़ी, स्थानीयता या किसी प्रकार के सामाजिक समूह से संबंधित है जिसकी अपनी विशिष्ट संस्कृति है। इस प्रकार व्यक्ति की सांस्कृतिक पहचान उसके खुद की विशेषताओं को भी बतलाता है एवं साथ-ही किसी सांस्कृतिक समूह की सदस्यता से संबद्धता को भी बतलाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारी अस्मिता के कई पहलू हैं। इनके निर्धारण में हमारे मूल्यों, संस्कृतियों, रूचियों, आदतों, अनुभवों, कौशलों, प्रतिभाओं, पसंद-नापसंद का योगदान होता है। एक

पेशेवर शिक्षक को अपनी अस्मिता को लेकर हमेशा सजग रहना होता है ताकि वह एक आदर्श कायम कर सके।

सेल्फ पोट्रेट

जब कोई व्यक्ति स्वयं से साक्षात्कार करता है तब उसे अपने अंदर छुपी हुई प्रतिभा, क्षमता, गुण, अवगुण के प्रति एक धारणा विकसित होती है, यह उस व्यक्ति विशेष का आत्म-संप्रत्यय कहलाता है। उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति किसी क्षेत्र विशेष में अति विशिष्ट योग्यता को पहचानता हो। साथ-ही दूसरी ओर उसे अपने पठन-पाठन के प्रति कम सकारात्मक क्षमता का भी बोध हो तो हम यह कह सकते हैं कि ऐसे व्यक्ति का स्वयं के प्रति आत्म-संप्रत्यय विकसित हो चुकी है। वहीं प्राय: किसी भी व्यक्ति के आत्म-संप्रत्यय के बारे में जानकारी प्राप्त करना इतना सरल नहीं होता। इसके लिए व्यक्ति का 'सेल्फ पोट्रेट' प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। सेल्फ पोट्रेट से हमें व्यकित से संबंधित संज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक पहलुओं की जानकारी उपलब्ध हो जाती है।

सेल्फ पोट्रेट स्व-मूल्यांकन का एक माध्यम है। यह स्वयं को आईने में खोजने के समान है। सेल्फ पोट्रेट के जरिए 'स्व' के कार्य-व्यवहार, गुण, विशेषता एवं कर्म से संबंधित विषय की जानकारी प्राप्त हो जाती है। सेल्फ पोट्रेट का आशय 'स्व' के बाह्य या आंतरिक पहलुओं के प्रति किसी विशेष परिप्रेक्ष्य में चिंतनशील होने से है। इसका उद्देश्य स्व के शीलगुणों या विशेषताओं या इसकी प्रकृति में परिवर्तन, संशोधन या परिमार्जन करने से होता है।

सेल्फ पोट्रेट के माध्यम से प्रशिक्षु शिक्षक स्वयं को जानने में सफल हो सकते हैं। साथ-ही अपनी योग्यता, क्षमता एवं कौशल आदि को विकसित करने में सक्षम हो सकते हैं। सेल्फ पोट्रेट प्रशिक्षु शिक्षक को विद्यलाय अनुभव कार्यक्रम के दौरान उनकी प्रभावशीलता की समीक्षा करने में मदद कर सकता है।

यह एक प्रकार की सकारात्मक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से प्रशिक्षु शिक्षक अपनी क्षमता, प्रतिभा, चिंता, धारणा तथा अभिवृत्ति का समीक्षात्मक आकलन एवं मूल्यांकन करता है। यह उनके द्वारा ली गई प्रत्येक कक्षा का भी मूल्यांकन करने में सहायक सिद्ध होता है जिससे वे अपने आप भविष्य के लिए अधिक सार्थक शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के चुनाव एवं उसके संचालन के भागीदार हो सकते हैं।

शिक्षकों के प्रत्येक प्रकार की भूमिकाओं में उनका सेल्फ पोट्रेट सहायक सिद्ध हो सकता है, चाहे वह विद्यालय-परिवार की कार्य परिस्थितियों में हो या उनके कक्षा-संचालन में अधिगम कर्ता के

रू॰ में हों। करते हुए। इन प्रत्येक परिस्थिति में व्यक्ति स्वयं के भूमिकाओं में अपेक्षित परिवर्तन, परिस्थितिजन्य कारणों या स्व–सक्षमता या कुशलता के प्रभावशीलता के कारण करते रहता है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति अपनी चिंतन शक्तियों का प्रयोग करता हुआ अपेक्षित परिवर्तनों की पहचान करता है और उसमें स्व–सक्षमता एवं कुशलता की सीमा के अनुकूल संशोधन एवं परिमार्जन लाने का प्रयास करता है। यह प्रक्रिया 'स्व' की आवश्यकता से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित होती है।

प्रशिक्षु शिक्षकों के परिप्रेक्ष्य में 'सेल्फ पोट्रेट' बनाने की प्रक्रिया अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी मानी जाती है। सेल्फ पोट्रेट व्यक्ति में भावात्मक आत्म जागरूकता का निर्माण करने में सहायता करता है। 'सेल्फ पोट्रेट' के माध्यम से 'स्व' से संबंधित अनेक संशयों का संभावित समाधान मिल जाता है। साथ–ही इसके माध्यम से प्रशिक्षु शिक्षक स्वयं की भावनाओं, सक्षमताओं, कमजोरियों, कमियों एवं अंतर्नोद कारकों के प्रति बेहतर समझ को विकसित कर सकता है।

प्रशिक्षु–शिक्षक जब अपने से जुड़े महत्त्वपूर्ण आयामों एवं पहलुओं को समझ लेता है तब वह अपने आप को परिवर्तित करने में सक्षम एवं कठिन परिस्थितियों के अनुकूल बना सकता है।

सेल्फ पोट्रेट–1

''मैं सुहानी हूँ। मैं शहरी कोलाहल से दूर ग्रामीण परिवेश में रहना पसंद करती हूँ। मैं शिक्षण पेशे में हूँ और यह मेरे जीवन का उद्देश्य भी है। मैं शिक्षण में नवाचार के विभिन्न तकनीकों का उपयोग करती हूँ। मैं मनोरंजन के लिए साहित्यिक किताबें पढ़ना पसंद करती हूँ और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए बैडमिंटन, फुटबॉल, वॉलीबॉल इत्यादि खेलना पसंद करती हूँ। मैं डिजीटल मीडिया को शिक्षण के अलावे उपयोग में नहीं लाती। इस कारण मेरी सहेलियाँ मुझे कूपमंडूक भी कहती हैं।''

प्रश्न 1: सुहानी का 'सेल्फ पोट्रेट' उनके व्यक्तितत्व के किस विशेषता को प्रमुखता से दर्शाता है और उनके व्यक्तितत्व का कौन–सा पक्ष प्रशिक्षु शिक्षकों के लिए आदर्श हो सकता है?

प्रश्न 2: आपके विचार से सुहानी ने अपने 'सेल्फ पोट्रेट' में किस पक्ष को अनदेखा कर दिया?

सेल्फ पोट्रेट–2

''मैं दीपांकर हूँ। मैंने दिल्ली विश्वविद्यालय से स्नातक किया है। मुझे नए लोगों से मिलना–जुलना, नई जगहों पर घूमना बहुत पसंद है। मैं कलकत्ता का रहनेवाला हूँ लेकिन मुझे दक्षिण भारतीय व्यंजन बेहद पसन्द है। मैं फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम इत्यादि पर काफी सक्रिय रहता हूँ। सोशल–मीडिया पर मेरे पोस्ट काफी सराहे जाते हैं। मैं वहाँ काफी सक्रिय रहता हूँ। मैं काफी

व्यवहारिक एवं सामाजिक व्यक्ति हूँ इसलिए पत्रकारिता के क्षेत्र में अपना हाथ आजमाना चाहता हूँ। मैं लोगों की समस्याओं को हल करने में भी विश्वास रखता हूँ।''

प्रश्न–1: दीपांकर ने मूल रूप से अपने 'सेल्फ पोट्रेट' में क्या बताने का प्रयास किया है?

प्रश्न–2: सोशल मीडिया पर सक्रिय रहना दीपांकर के व्यक्तित्व के किस पहलू की ओर ध्यान आकृष्ट करता है?

सेल्फ पोट्रेट 01 एवं सेल्फ पोट्रेट 02 के माध्यम से दो व्यक्ति विशेष का स्वयं के प्रति बनाई गई अवधारणाओं की जानकारी मिलती है। सेल्फ पोट्रेट किसी विशेष परिप्रेक्ष्य में चिंतनशील होता है, इन दोनों पोट्रेट को हम स्व–आकलन एवं मूल्यांकन में संपूर्णता के साथ उपयोग नहीं कर सकते। इसलिए प्रशिक्षु शिक्षकों के लिए एक पेशेवर 'सेल्फ पोट्रेट' के अवयवों को चिन्हित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई जिसके जरिए अपनी कृति, अभिवृत्ति, चिंतन, क्षमता और प्रतिभा पहचानने में सफल हो सके।।

आत्म–अभिव्यक्ति की समझ

परिचय

एक शिक्षक के रूप में पूर्ण रूप से विकसित होने में एक विद्यार्थी को अपने आप को समझना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। जब हम अपने (स्वयं) को समझने की बात करते हैं तो उसका प्रारंभिक चरण होता है कि हम अपने वातावरण के प्रति किस प्रकार से अन्तःक्रिया करते हैं। वह अन्तःक्रिया ही व्यक्ति के मानवीय तथा चारित्रिक गुणों को व्यवहारिक रूप देती है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि विद्यालयी वातावरण को इस प्रकार सुरक्षित एवं संरक्षित किया जाय कि विद्यार्थी जो भविष्य का एक जिम्मेदार नागरिक है, अपने भावों तथा विचारों को बिना किसी दबाव के व्यक्त कर सके। साथ–ही उसका स्वयं ही मूल्यांकन कर सके कि वह कितना मूल्यपरक तथा समाज परक है।

आत्म अभिव्यक्ति से संबंधित परिभाषायें

1. मैत्रेय उपनिषद् – ''आत्मा ही वह तत्व है, जिसका दर्शन करना चाहिए, श्रवण करना चाहिए, मनन करना चाहिए।''
2. शंकराचार्य – ''आत्मज्ञान प्राप्त करने से महान और कोई सफलता नहीं है।''
3. शंकराचार्य – ''जिस प्रकार सूर्य का स्वभाव प्रकाश, जल का शीतलता एवं अग्नि का उष्णता है, उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव सच्चिदानन्द, नित्यता तथा निर्मलता है।

4. स्वामी विवेकानन्द – ''तुमको भीतर से बाहर विकसित होना है, कोई तुमको न सिखा सकता है, न आध्यात्मिक बना सकता है, तुम्हारी आत्मा के अलावा और कोई गुरू नहीं है।''

आत्म–अभिव्यक्ति का अर्थ

अभिवृत्ति का अर्थ विचारों के प्रकाशन से है। व्यक्तित्व के समायोजन के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अभिव्यक्ति को मुख्य साधन माना है। इसके द्वारा व्यक्ति अपने मनोभावों को प्रकाशित करता है, तथा अपनी भावनाओं को रूप देता है।

भारतीय दार्शनिक विचारधारा पूर्ण रूप से आत्मा, चेतना, ईश्वर, जीव–जगत के बारे में अध्ययन करते समय व्यक्ति के 'स्व' तथा अभिव्यक्ति को ही केन्द्र में रखती है। विवेकानन्द, अरविन्दो, महात्मा गाँधी, देकार्टे, शंकराचार्य का जीवन के प्रति दर्शन में आत्म–अभिव्यक्ति भी एक प्रमुख पक्ष के रूप में प्रदर्शित होता है।

दार्शनिक विचारधारा में आत्म (self) प्रारम्भ से ही चिन्तन का महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। यद्यपि सामान्य मनुष्य को अपने आत्मा के अस्तित्व में सन्देह नही होता, क्योंकि वह हमेशा अपने 'मैं' के इर्द–गिर्द ही रहता है। किन्तु यह 'मैं' क्या है, इस पर वह कभी गंभीरता से विचार नहीं करता है।

आत्म–अभिव्यक्ति की समझ विकसित करने की आवश्यकता

वर्तमान समय में जहाँ विश्व एक कुटुम्ब के रूप में देखा जा रहा है, वहाँ अपने आप को समझना तथा उसके अनुसार अपने आप को समाज में स्थापित करना तभी सम्भव है, जब विद्यार्थियों में सामाजिक मूल्यों का विकास हो। उन सामाजिक मूल्यों को विद्यार्थी अपने व्यावहारिक परिवेश अर्थात् विद्यालय में उपयोग करना सीखे तथा सीखने की इस प्रक्रिया में उनके व्यवहार में एक सकारात्मक परिवर्तन हो।

आत्म अभिव्यक्ति की समझ विकसित करने के साधन

1. आत्मकथा के रूप में
2. स्वयं के चित्रण के रूप में (self Portrait)
3. खेल में अपनी भूमिका के रूप में
4. सामाजिक योगदान के रूप में
5. भूमिका के निर्वहन के रूप में
6. प्रक्षेपीय प्रविधियों के रूप में

7. सांस्कृतिक क्रियाकलापों के रूप में
8. नाट्य मंचन (Drama) के रूप में
9. सोशल मीडिया में रचनात्मक लेखन करके

आत्म अभिव्यक्ति की विशेषताएँ

1. निर्भयता एवं आत्म विश्वास
2. तथ्यपरक विचार सामग्री
3. विश्लेषण-संश्लेषण
4. शब्द उच्चारण
5. गति आरोह
6. भाव एवं विचार
7. हाव-भाव अंग संचालन
8. भाषा तत्व तथा उच्चारण
9. सरल, सुबोध तथा सारगर्भित
10. क्रमबद्धता तथा भावानुकूलता

आत्म स्वीकार्यता

आत्म सम्मान का एक आधार आत्म स्वीकृति होती है। इस अवधारणा को एक विशेषता के रूप में परिभाषित किया गया है कि न केवल हम अपने होने के तरीकों का सम्मान करते हैं, बल्कि हम इसे सकारात्मक तरीके से महत्त्व देते हैं। कैरोल राइफ के अनुसार, ''आत्मस्वीकृति कल्याण के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण है।''

वर्तमान के इस जटिल समाज में एक विद्यार्थी को 'अपनी स्वीकार्यता' को समझना तथा इस आधार पर आगे बढ़ना बहुत ही महत्वपूर्ण है। अपनी स्वीकार्यता के दो पहलू हैं:-

1. **सकारात्मक** - अपने व्यक्तितत्व के गुण
2. **नकारात्मक** - अपने व्यक्तितत्व के नकारात्मक पहलू

   आत्म स्वीकार्यता को मुख्यत: तीन रूपों में समझा जा सकता है -

i. अपने गुणों तथा कमियों के बारे में जागरूकता
ii. व्यक्ति के प्रतिभा, योग्यताओं तथा गुणों का वास्तविक आकलन
iii. अपने भूतकाल के असफलताओं के बावजूद आत्मसंतुष्टि का भाव

स्वाभिमान

मुख्यतः स्वाभिमान शब्द आत्मगौरव तथा आत्म-सम्मान के लिए प्रयुक्त होता है। स्वाभिमान शब्द के कई समानार्थी शब्द हैं, जैसे - आत्मसम्मान की भावना, आत्मविश्वास।

स्वाभिमान का सामान्य अर्थ पाठशाला में ही संधि-विच्छेद में पढ़ा था कि स्व का अभिमान मतलब स्वाभिमान। स्व का मतलब खुद, आप, स्वयं। यह एक ऐसा शब्द है जो हमें जागृत करता है, प्रेरित करता है, और हमें कर्तव्य के प्रति आगे बढ़ने के लिए ललकारता है। स्वाभिमान हमारे अपने विश्वास को जागृत करता है। अपने जीवन मूल्यों के प्रति, अपने देश के प्रति, अपनी संस्कृति, अपने समाज तथा अपने कुल के प्रति स्वाभिमानी बनने की प्रेरणा देता है। स्वाभिमानी समाज को महत्वपूर्ण समझता है, परन्तु अभिमानी खुद को महत्वपूर्ण समझता है।

स्वाभिमान की श्रेष्ठता को ईमान कहा जाता है। इंसान जब सत्य एवं निष्ठा से अपने कार्यों को परिणाम रूप देता है, तथा अपने सभी कर्त्तव्यों का पालन पूर्ण निष्ठा से करता है, तब वह इमानदार कहलाता है। महात्मा विदुर ने कहा है, ''बुढ़ापा रूप को, आशा धैर्य को, मृत्यु प्राण को, काम लज्जा को, एवं अभिमान सर्वस्व को हरण कर लेता है।''

आइए, स्वाभिमान को एक उदाहरण के द्वारा समझने का प्रयास करते हैः-

एक जगह बाढ़ आयी थी। समाजसेवी संस्थायें बाढ़ पीड़ितों को सहायता का वितरण कर रही थीं। कुछ स्वयंसेवकों ने एक वृद्धा की झोपड़ी में पहुँचकर उसे सहायता देने का प्रस्ताव रखा। उसने बड़े प्रेम से मना कर दिया, वह बोली, 'बेटा! मैं पिछले बीस वर्षों से अपनी मेहनत की कमाई खा रही हूँ। मुझे आपकी सहायता नहीं चाहिए'। स्वयंसेवक अवाक थे, एवं उस वृद्धा के स्वाभिमान के आगे नतमस्तक।

स्वाभिमानी तथा अभिमानी में अन्तर

1. स्वाभिमानी हमेशा आश्वस्त होते हैं, जबकि अभिमानी को कभी खुद पर विश्वास नहीं होता।
2. स्वाभिमानी सोचते हैं कि सभी से समान व्यवहार हो, जबकि अभिमानी हमेशा अपने से दूसरों को निम्नतर मानते हैं।
3. स्वाभिमानी स्थिर चित्त होते हैं, जबकि अभिमानी हमेशा विचलित नजर आते हैं।
4. स्वाभिमानी कठिन परिश्रम से सफलता प्राप्त करना चाहते हैं, जबकि अभिमानी अवसरवादी होते हैं।

5. स्वाभिमानी अपने स्वभाव से पूर्ण परिचित रहते हैं, जबकि अभिमानी को अपने स्वभाव पर नियंत्रण नहीं रहता।
6. स्वाभिमानी अपनी आलोचना को हितकर मानते हैं, जबकि अभिमानी अपनी आलोचना सहन नहीं करते हैं।
7. स्वाभिमानी अपनी योग्यता के प्रति हमेशा सचेत रहता है, जबकि अभिमानी अपनी योग्यता को लेकर अति आत्मविश्वासी।
8. अभिमानी व्यक्ति चाहता है कि केवल उन्हीं की बातों को सुना जाय तथा माना जाय, वे दूसरों की बातों तथा विचारों को महत्त्व नहीं देते, जबकि स्वाभिमानी अपने विचारों को दूसरे पर नहीं थोपते हैं।

आत्मविश्वास

आत्मविश्वास से आशय स्वयं पर विश्वास तथा निपुणता से है। हमारे जीवन में आत्मविश्वास का होना उतना ही आवश्यक है, जितना फूल में सुगंध का होना। आत्मविश्वास के बिना हमारा जीवन एक पतवारविहीन नौका के समान है। कोई भी व्यक्ति कितना भी प्रतिभाशाली क्यों न हो, वह आत्मविश्वास के बिना कुछ नहीं कर सकता। आत्मविश्वास ही सफलता की नींव है। आत्मविश्वास की कमी के कारण व्यक्ति स्वयं के द्वारा किये गये कार्य पर सन्देह करता है तथा नकारात्मक विचारो के जाल में फंसता है। आत्मविश्वास उसी व्यक्ति के पास होता है, जो स्वयं से संतुष्ट होता है तथा उसके पास दृढ़ निश्चय, मेहनत, लगन, साहस तथा वचनबद्धता जैसे संस्कारों की सम्पत्ति होती है।

आत्मविश्वास के विकास के उपाय

आत्म विश्वास बढ़ाने के लिए विद्यार्थियों को निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए:–

1. विद्यार्थियों को स्वयं पर विश्वास रखना चाहिए।
2. जो भी लक्ष्य चुने उसे पूरा करने के लिए वचनबद्ध रहें। जब विद्यार्थी अपने द्वारा बनाये गये लक्ष्य को पूरा करता है तो वह अपने आत्मविश्वास में वृद्धि करता है।
3. लक्ष्य को हमेशा SMART होना चाहिए
4. S - Specific - स्पष्ट

   M - Measurable - मापने योग्य

   A - Achievable - प्राप्त किया जा सके

   R - Realistic - वास्तविक

T - Time Bond - निर्धारित समय सीमा में पूरा होने लायक

5. विद्यार्थी को हमेशा खुश रहकर स्वयं को प्रेरित करना चाहिए, असफलता प्राप्त होने पर दुखी होने के बजाय उससे सीख लेनी चाहिए, क्योंकि अनुभवों का परिमार्जन असफल प्रयास से प्राप्त होता है।
6. विद्यार्थी को जीवन की शुरूआत आसान कार्य करके करना चाहिए, क्योंकि आसान कार्य विद्यार्थी सरलता से कर लेते हैं, जिससे उसके आत्मविश्वास में वृद्धि होती है।
7. वह कार्य करें जिसमें आपकी रूचि हो, या कोशिश करें कि अपने जीवन लक्ष्यों को उसी दिशा में आगे ले जायें, जिसमें आपकी रूचि हो।
8. वर्तमान में जीने की कला सिखनी चाहिए, न कि भूतकाल एवं भविष्यकाल में।
9. ध्यान, योग एवं प्राणायाम करना चाहिए।
10. अपनी सफलता को याद रखना चाहिए।

आत्म अभिप्रेरणा

अभिप्रेरणा लक्ष्य आधारित व्यवहार या उत्प्रेरणा या उर्जाकरण है। अभिप्रेरणा या प्रेरणा आन्तरिक या बाह्य हो सकती है। आत्म अभिप्रेरणा अपने आप में किसी कार्य या गतिविधि में ही अन्तर्निहित पुरस्कार जैसे किसी पहेली का आनन्द लेने या खेल से लगाव से आती है। 1970 के दशक से प्रेरणा के इस स्वरूप का अध्ययन सामाजिक और शैक्षणिक मनोविज्ञान द्वारा किया जा रहा है। शोध में पाया गया है कि यह आमतौर पर उच्च शैक्षणिक उपलब्धि और विद्यार्थियों द्वारा उठाये जाने वाले लुत्फ के साथ जुड़ा हुआ है। फिट्ज हेइडर के गुणारोपण सिद्धान्त, वंडूरा के आत्मबल पर किये गए कार्यों और रयान एवं रयान और डेबी के संज्ञानात्मक मूल्यांकन सिद्धान्त के जरिये आन्तरिक प्रेरणा की व्याख्या की गयी।

जब व्यक्ति का उद्देश्य काफी दूर हो तथा उसे बाहर से पर्याप्त अभिप्रेरणाएँ उपलब्ध न हो पा रही हो तो उसमें यह क्षमता होनी चाहिए की वह स्वयं को निरन्तर प्रेरित कर सके। यही आत्म–अभिप्रेरणा है।

आत्म अभिप्रेरणा के पक्ष

1. बीच–बीच में मिलनेवाले तात्कालिक लाभों के लालच को रोक पाना।
2. अगर उद्देश्य बहुत बड़ा तथा चुनौतिपूर्ण हो तो कई बार मन में ऐसे भाव आना स्वाभाविक है कि सफलता नहीं मिलेगी, निराशा के ऐसे क्षणों में हार मानने की बजाय उचित समाधान की योजना बनाना।
3. लम्बे संघर्ष के दौरान होने वाली थकान व बोरियत से निरंतर जूझते रहना।

आत्म–अभिप्रेरणा के तरीके

1. दिनचर्या को ऐसा बनाना कि उसमें मनोरंजन तथा अपनी रूचियों के लिए कुछ समय जरूर बचा रहे।
2. ऐसे समूह में रहना जिसके उद्देश्य समान हो ताकि आपका उद्देश्य सही है, इसकी पुष्टि होती रहे।
3. दूसरों की निराशा के क्षणों में उनके साथ खड़ा होना ताकि वे भी आपकी निराशा के क्षणों में आपके साथ खड़े हो।
4. विफलता के डर की सहज अभिव्यक्ति के मार्ग खोजना ताकि वह मानसिक कुंठा न बन जाय, जैसे – किसी अंतरंग मित्र को बताना या कागज पर लिखकर फाड़ देना।
5. अपनी सफलता की संभावनाओं के प्रति सकारात्मक भाव बनाये रखना और आत्म–अभिपुष्टि के लिए लिखने या मित्रों से कहने की आदत डालना, इसे एक शब्द में Auto suggestive mode कहा जाता है।

शिक्षक/शिक्षिका प्रोफाईल

शिक्षक के लिए सीखने और सिखाने की प्रक्रिया जीवन–पर्यन्त चलती रहती है। सीखने की इस प्रक्रिया में आत्म–साक्षात्कार या आत्म प्रतिबिंवन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शिक्षक–प्रशिक्षण के दौरान हम प्रशिक्षु में विभिन्न शिक्षण तकनीकी क्षमताओं को विकास करते हैं जिससे वह अच्छे शिक्षक के रूप में समाज में अपनी भूमिका का निर्वहन बेहतर तरीकें से कर सके। जैसा हम जानते हैं कि जॉन डिवी के अनुसार विद्यालय किसी भी समाज का लघु रूप होता है। और शिक्षक उस समाज के नेतृत्वकर्ता की भूमिका में होते हैं। इसीलिए एक शिक्षक को अपने व्यक्तित्व को सही तरीके से आकलन करना चाहिए और शिक्षक प्रोफाईल इस कड़ी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक शिक्षक प्रोफाईल SWOT के सभी अवयव इस प्रकार हैं:–

S- Strength (सबलता)

W- Weakness (दुर्बलता)

O- Opportunity (अवसर)

T- Threatens (चुनौतियां)

इस तरह SWOT आधारित शिक्षक प्रोफाईल शिक्षकों के तमाम पहलुओं/क्षमताओं का विश्लेषण करने में सहायक सिद्ध होता है।

शिक्षक प्रोफाईल

शिक्षक का नाम– ....

व्यक्तिगत विवरण –

1. मोबाईल न0..
2. ई–मेल...
3. जन्म तिथि..
4. लिंग..
5. राष्ट्रीयता..
6. धर्म...
7. भाषा ज्ञान...
8. पता...
   ....

शैक्षिक एवं पेशेवर योग्यता–

1..

2..

3..

4..

5..

6..

7..

8..

पेशेवर कौशल–

1..

2..

3..

सबल पक्ष–

1..

2..

3..

4..

5...

दुर्बल पक्ष–

1..

2..

3..

4..

5...

नवाचार– 1. आपके द्वारा एक सप्ताह में किये गये नवाचारों की संख्या–..

2. आप अपनी कक्षा में सूचना एवं तकनीकी के किन–किन साधनों का उपयोग करते हैं?–..
....

स्वमूल्यांकन– ....
....
....
....
....

इकाई–2

विषय–वस्तु

- परिचय
- शिक्षक की अस्मिता
- समकालीन विमर्श
- आदर्श शिक्षक की संकल्पना
- अस्मिता के सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य
- व्यवहार
- धारणा
- चिंतन
- विभिन्न आयाम
- शिक्षक की भूमिका
- पहचान
- चुनौतियाँ
- विद्यालय संस्कृति

अपनी अस्मिता के प्रति सजगता

प्रथम अध्याय में हमलोगों ने एक व्यक्ति के रूप में स्वयं को समझने की कोशिश की है। अपने व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से परत दर परत उद्‌घाटित करना एक अनोखा अनुभव होता है एवं यह हमारी पेशेवर दक्षता को मजबूती प्रदान करता है। मैं कौन हूँ? जैसे प्रश्नों से टकराने के क्रम में अपनी अस्मिता के प्रति सजगता, अपनी स्वीकार्यता, आत्मविश्वास इत्यादि पहलुओं ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है। इस अध्याय में हम एक शिक्षक के रूप में अपनी अस्मिता की पड़ताल करेंगे एवं शिक्षकों की अस्मिता संबंधी सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य के आलोक में अपनी धारणाओं, चिंतन एवं व्यवहार के विभिन्न आयामों का अन्वेषण करेंगे। एक पेशेवर शिक्षक के रूप में अपनी भूमिका की पहचान एवं सम्मुख चुनौतियों की समझ से चुनौतियों को अवसर में बदलने के व्यावहारिक कौशल की पड़ताल जरूरी है। इस परिप्रेक्ष्य में अपनी भूमिका के प्रति सजगता ही हमें हमारे पुराने गौरव को वापस कर सकता है। वर्तमान सामाजिक संदर्भ में शिक्षकों की पेशेवर क्षमता पर कई सवाल खड़े हुए हैं। उन सवालों का आलोचनात्मक मूल्यांकन कर हम एक आदर्श शिक्षक की छवि को वापस करने में अपनी भूमिका की तलाश करेंगे। प्रस्तुत अध्याय इन तमाम पहलुओं पर विमर्श में सहायक होगा।

उद्देश्य

1. शिक्षकों की अस्मिता संबंधी समकालीन विमर्श को समझेंगे तथा एक आदर्श शिक्षक की संकल्पना को आत्मसात करेंगे।
2. शिक्षकों की अस्मिता संबंधी सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य को वर्तमान विद्यालयी संदर्भ में समझेंगे।
3. अपनी धारणाओं, चिंतन एवं व्यवहार के विभिन्न आयामों को समझेंगे तथा पेशेवर अपेक्षाओं के अनुरूप बनायेंगे।
4. शिक्षक के रूप में अपनी भूमिका की पहचान करेंगे तथा विद्यालयी संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में इसके चुनौतियों का समाधान निकालेंगे।
5. विभिन्न क्रियाकलापों (सेल्फ पोट्रेट, नाटक, संवाद, रिफ्लेक्टिव डायरी) के माध्यम से उपरोक्त बिंदुओं से संबंधित गतिविधि में भाग लेंगे।

शिक्षकों की अस्मिताः समकालीन विमर्श

पूर्व के अध्याय में हमने यह देखा कि हमारी अस्मिता या पहचान बहुआयामी होती है, मसलन – एक ही व्यक्ति एक स्थान पर विद्यार्थी के रूप में जाना जाता है तो दूसरे स्थान पर शिक्षक के रूप में भी उसकी पहचान होती है एवं वही व्यक्ति रिश्तेदारों के लिए रिश्ते–नाते को अभिव्यक्त करनेवाले संज्ञा–रूपों से जाना जाता है। शिक्षकों की अस्मिता से हमारा तात्पर्य किसी व्यक्ति की

उन विशेषताओं, लक्षणों, व्यवहारों के धारण करने से होता है जो एक शिक्षक के रूप में स्थापित पेशेवर कौशलों से मेल खाता हो। साधारण शब्दों में यदि आप अध्ययन-अध्यापन का कार्य करते हों तो आपकी अस्मिता एक शिक्षक के रूप में स्थापित होती है। इस अध्ययन-अध्यापन के कार्य से अपेक्षित सामाजिक, राजनीतिक आकांक्षायें अनायास ही जुड़ी रहती है तथा तदनुकूल परिणाम की प्रत्याशा एक शिक्षक को पेशेवर पहचान बनाने को बाध्य करती है।

एक शिक्षक के रूप में हमारी पहचान अपनी पेशेवर दक्षता एवं कौशलों के धारण करने पर ही निर्मित होती है। हम यह भी जानते हैं कि यह पेशेवर दक्षता समय एवं स्थान के सापेक्ष होती है। वैदिक काल से लेकर आज के दौर में इनमें निरंतर परिवर्तन होते रहा, तब शिक्षक की छवि ज्ञान के एकमात्र स्रोत के रूप में थी जबकि आज उसकी भूमिका सुगमकर्त्ता की हो चली है। कुछ समय पहले तक शिक्षा खास वर्गों तक सीमित थी। आज विश्वव्यापी शिक्षा की बात हो रही है। इन तमाम परिवर्तनों ने शिक्षकों की भूमिका को नये सिरे से रेखांकित करने की मांग की है। भारत में शिक्षा नीति संबंधी दस्तावेजों में भी शिक्षकों के वृत्तिक विकास संबंधित सुझाव दिये गये हैं ताकि उनकी पहचान एवं गरिमा कायम की जा सके।

आइये अब हम शिक्षकों के अस्मिता संबंधी उन समकालीन विमर्शों की पड़ताल करें जिनमें शिक्षकों की अस्मिता पर गंभीर सवाल खड़े किये जा रहे हैं।

1. **राजनीतिक कारक** (विमर्श)

एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा निर्मित शिक्षक-शिक्षा हेतु राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र की निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य है:-

''औपचारिक विद्यालयी व्यवस्था के अंतर्गत बड़े पैमाने पर अस्थायी शिक्षकों की भर्ती और सेवा-पूर्व प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रति लापरवाही वाला दृष्टिकोण राज्य द्वारा दी जाने वाली प्रारंभिक शिक्षा का अंतरंग हिस्सा बन चुके हैं। इससे शिक्षक की पेशेवर के रूप में पहचान हल्की हुई है और इसने सरकारी विद्यालयी व्यवस्था और समुदायों के उस विश्वास का भी क्षरण किया है जिसमें शिक्षक को बदलाव लाने वाली मजबूत कड़ी के रूप में देखा जाता था। बड़े पैमाने पर पैरा शिक्षकों की बहाली से शिक्षकों की पेशेवर पहचान प्रभावित हुई है।'' (NCF-2005)

हमारी शिक्षा व्यवस्था में जहाँ बच्चे को पर्याप्त जगह देने की बात स्वीकार की जा रही है, वहीं शिक्षकों को अभी भी उचित जगह नहीं दी जा रही है। उन्हें ज्ञान उत्पन्न करने और सोचने वाले पेशेवर के रूप में देखा जाना जरूरी है।

क. शिक्षकों की पेशेवर दक्षता

नीति दस्तावेजों और आयोग की रिपोर्टों में शिक्षकों की सक्रिय भूमिका की बात बारम्बार किए जाने के बावजूद पिछले तीस सालों से शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम उसी शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षकों को प्रशिक्षण दे रहा है जिसमें शिक्षा को सूचनाओं के प्रसार और अधिगम को पाठ्यपुस्तकों से पुनर्उत्पादित माना जाता है। यही वजह है कि जड़वत शिक्षक समुदाय को गतिमान बनाने हेतु कुछ खास नहीं हो पा रहा है।

ख. शिक्षकों की भाषायी कौशल

भाषा हमारी अस्मिता को पर्याप्त रूप से स्थिर एवं सुनिश्चित करता है। शिक्षकों की भाषा-शैली उसे विद्यार्थियों से जोड़ने में सेतु का कार्य करती है और यह जुड़ाव उसे एक शिक्षकीय पहचान प्रदान करती है। शिक्षक-शिक्षा के कार्यक्रम में यह आमतौर पर माना जाता है कि शिक्षक-प्रशिक्षु का भाषा ज्ञान और निपुणता पर्याप्त है इसलिए यह प्रशिक्षकों की चिंता का विषय नहीं होना चाहिए, जबकि अनुभव बताते हैं कि शिक्षकों द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा में दक्षता बढ़ाने की जरूरत है।

ग. शिक्षकों की वृत्तिक मान्यताओं में परिवर्तन

यदि शिक्षक स्वयं से यह सवाल पूछें कि इस पेशे में मै क्यों आना चाहता हूँ तो संभवत: अधिकांश का उत्तर होगा - आजीविका की तलाश में। आज अध्ययन-अध्यापन के पेशे में लोग स्वाभाविक रूचि एवं जुनून के कारण नहीं बल्कि बेरोजगारी के दबाव में आ जा रहे हैं। नतीजा यह हो रहा है कि वे विद्यालय की शिक्षायी जरूरतों को न तो समझ ही पाते हैं न ही जुड़ाव हो पाता है। विद्यालयी व्यवस्था की उभरती माँगों के प्रति असंवेदनशीलता उनकी शिक्षकीय पहचान को प्रभावित करती है। शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम चाहे वो सेवा-पूर्व हो अथवा सेवाकालीन उसे वे गहन प्रशिक्षण का जरिया न समझकर अकादमिक उपाधियों की तरह लेते हैं। शिक्षक-प्रशिक्षण के अनुभवों से पता चलता है कि उसमें ज्ञान को 'प्रदत्त' (असाइनमेंट) की तरह बाँध दिया जाता है। पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों का न तो शिक्षक-प्रशिक्षक द्वारा परीक्षण किया जाता है न ही वहाँ के अन्य शिक्षकों द्वारा। (NCF-2005)

घ.सामाजिक अपेक्षाएँ

शिक्षा के सरोकार सामाजिक सरोकारों से गहरे रूप से जुड़े होते हैं तथा समाज अपनी समस्याओं का हल ढूंढ़ने की अपेक्षा शैक्षिक जगत से करता है। विद्यालयी व्यवस्था के केन्द्र में शिक्षक एवं विद्यार्थी होते हैं। आज का समाज परंपरागत शिक्षा के बजाए व्यवसायिक एवं रोजगारपरक शिक्षा

की अपेक्षा कर रहा है। साथ–ही प्रतिस्पर्द्धा जनित मूल्यों के क्षरण से भी चिंतित है। समाज शिक्षक से यह अपेक्षा कर रहा है कि उन आदर्शों, मूल्यों एवं विचारों को स्वयं में धारित कर आदर्श शिक्षक की अनुकरणीय छवि प्रस्तुत करे एवं विद्यार्थियों को भी मानवीय जीवन मूल्यों से अनुप्राणित करें।

ड.विद्यालयों में शिक्षण की हकीकत

विद्यालयों में शिक्षण–अधिगम की वर्तमान स्थिति ने भी शिक्षकों की भूमिका पर सवाल खड़े किये हैं और इससे शिक्षकों की अस्मिता प्रभावित हुई है। शोध निष्कर्ष इस तरफ इशारा करते हैं कि विद्यार्थियों की उपलब्धि स्तर से शिक्षकीय पहचान का गहरा जुड़ाव है। जिन विद्यालयों के विद्यार्थियों का उपलब्धि–स्तर अधिक है वहाँ के शिक्षकों की पहचान भी आदर्श रूप में स्थापित हुई है वहीं कम उपलब्धि–स्तर वाले विद्यालयों के शिक्षक की पहचान भी कमजोर हुई है। अधिकांश विद्यालयों की पहचान एक कमजोर, लचर एवं उबाऊ स्थान के रूप में ज्यादा और सीखने–सीखाने वाले स्थान के रूप में कमतर है, परिणामस्वरूप शिक्षकों की कार्यकुशलता, अभिरूचि एवं इच्छाशक्ति संदेह के घेरे में आती गयी और शिक्षकीय पहचान भी तदनुरूप ही स्थापित हो रही है। आज शिक्षक पथ–प्रर्दशक एवं रॉल मॉडल न रहकर नौकरी करनेवाला व्यक्ति बन गया है।

एक आदर्श शिक्षक की संकल्पना

शिक्षकों पर राष्ट्रीय आयोग संबंधी चट्टोपाध्याय समिति रिपोर्ट (1983–85) ने नए शिक्षक की अभिकल्पना इस रूप में की है जो विद्यार्थियों से इस तरह का संबंध कायम करता है जिसमें बताया जाता है ‘‘... राष्ट्रीय अखंडता और एकता की भावना का महत्व, वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता, अपने काम में उत्कृष्टता के लिए प्रतिबद्ध रहना और अपने समाज के लिए चिंतित होना।’’

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986–92) ने इस बात पर ध्यान दिया कि ‘‘शिक्षकों को नवाचार के लिए तथा समुदाय की जरूरतों, सरोकारों एवं क्षमताओं के मुताबिक संचार और गतिविधियों के लिए उपयुक्त विधियों को ईजाद करने की आजादी होनी चाहिए।’’ ‘‘शिक्षा बिना बोझ के (1993); यशपाल कमिटी की रिपोर्ट ने माना कि ‘प्रशिक्षुओं में स्व–शिक्षण और स्वतंत्र यिंतन की क्षमता के विकास पर जोर होना चाहिए।’’

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा–2005 ने एक आदर्श शिक्षक की संकल्पना करते हुए उल्लेखित किया है कि शिक्षक को विद्यालयी व्यवस्था के प्रति अधिक संवेदनशील होना चाहिए एवं अपनी भूमिका निम्न रूप में निभानी चाहिए:–

- ऐसे व्यक्तियों के समूह का सक्रिय सदस्य बनें, जो लगातार सामाजिक और विद्यार्थियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ध्यान में रखे।
- सीखना किस प्रकार होता है, इसकी समझ उसमें हो और वह उसके अनुकूल माहौल बनाए।
- ज्ञान को व्यक्तिगत अनुभव के रूप में समझें जो सीखने–सिखाने के साझे अनुभव के रूप में प्राप्त किया जाता है, न कि पाठ्यपुस्तकों के बाह्य यथार्थ के रूप में।
- उन सामाजिक, पेशेवर और प्रशासनिक संदर्भों के प्रति उसमें संवेदनशीलता हो जिनमें उसे काम करना पड़ता है।
- इस प्रकार की उपयुक्त क्षमताओं का विकास वह कर सके जिससे वास्तविक स्थितियों में उसकी न केवल उपरोक्त समझ हो बल्कि वह उनकी रचना भी कर सके।
- भाषा की गहरी समझ और दक्षता हासिल करे।
- अपनी आकांक्षाओं, स्व–समझ, क्षमताओं और रूझानों को पहचानें।
- वह शिक्षक के रूप में पेशेवर उन्मुखीकरण सतत करे।
- मूल्यांकन को सतत शैक्षिक प्रक्रिया माने।
- कला शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों में कला और सौंदर्य बोध का विकास कर सके।
- वंचित बच्चों और विभिन्न असमर्थताओं वाले बच्चों की आवश्यकताओं सहित सभी बच्चों की सीखने की आवश्यकताओं को समझ सके।
- परामर्श के कौशल से लैस हो ताकि बच्चों के शैक्षणिक, व्यक्तिगत और सामाजिक स्थितियों का समाधान सुझाने में सक्षम हो।
- कार्य के द्वारा विभिन्न विषयों का ज्ञान विविध मूल्यों और विविध कौशलों के विकास के साथ किस प्रकार प्राप्त होता है इसकी शिक्षा सुनिश्चित करें।
- बच्चों का ख्याल करे व उनके साथ रहना पसंद करे।
- सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संदर्भों में बच्चों को समझ सके।
- ग्रहणशील और निरंतर सीखनेवाला हो।
- शिक्षा को अपने व्यक्तिगत अनुभवों की सार्थकता के खोज के रूप में देखें तथा ज्ञान निर्माण को निरंतर चलने वाली प्रक्रिया समझे।
- ज्ञान को पाठ्यपुस्तकों के बाह्य ज्ञान के रूप में न देखकर साझा संदर्भों और व्यक्तिगत संदर्भों में उसके निर्माण को देखें।
- समाज के प्रति अपना दायित्व समझें और बेहतर विश्व के लिए काम करे।

- पाठ्यचर्या की रूपरेखा, उसके नीतिगत–निहितार्थ एवं पाठों का विश्लेषण करे।

शिक्षक अस्मिता के सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

अस्मिता की अवधारणा नितान्त जटिल एवं पेचीदा है जो कि बहुआयामी एवं बहुपरती है। किसी भी व्यक्ति या समूह के अस्मिता का निर्धारण उस व्यक्ति या समूह के सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक परिवेश/परिकल्पना, महत्वाकांक्षाओं एवं क्षमताओं के आधार पर विकसित होता है।
उक्त तथ्य शिक्षकों के अस्मिता संबंधी सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए अनिवार्य परिस्थिति प्रतीत होते हैं। अन्य शब्दों में इसका अभिप्राय यह है कि शिक्षक की अस्मिता के सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए यह जानना जरूरी होगा कि एक व्यक्ति या समूह के रूप में संबंधित शिक्षक अपने अस्मिता को किस तरह से परिभाषित करना चाहते हैं तथा वे अपने आप को किस परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करते हैं।
पिछले कुछ दशकों में शिक्षक अस्मिता के सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य से संबंधित महत्वपूर्ण नवीन शोध हुए हैं। Groontenboer, l Losrie Smith (2006), अपने किए गए शोध में सुझाते हैं कि शिक्षक अस्मिता के संदर्भ में मुख्य रूप से तीन सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्यों को देखा जा सकता है:–

- मनोवैज्ञानिक विकास का परिप्रेक्ष्य
- सामाजिक व सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य
- उत्तर संस्थानवादी परिप्रेक्ष्य

शिक्षाशास्त्र के अधिकतर शोधार्थी हाल तक 'सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य' के आधार पर ही शिक्षक अस्मिता का अध्ययन करते रहे हैं जैसे Boaler (2002), Wnger (2007)। इसके अलावा कई अध्ययनों में उत्तर संरचनावादी परिप्रेक्ष्य को भी अध्ययन का केन्द्र बनाया गया है। आध्यात्मिक (Narrative) शैली के रूप में शिक्षकों की अस्मिता के अध्ययन के लिए नया परिप्रेक्ष्य विकसित हुआ है। जिसके आधार पर कई शोधार्थियों ने अपने अध्ययन शुरू किए हैं। इस संदर्भ में समूचे परिप्रेक्ष्य को अनुभवजन्य बनाकर वृत्तांत के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तथा उसके सैद्धान्तिक निष्कर्ष को इंगित किया जाता है। जहाँ एक तरफ विभिन्न शोधार्थी उपरोक्त परिप्रेक्ष्यों में से किसी एक को चुनकर अपना शोध कार्य करते हैं वहीं दूसरी तरफ कई शोधार्थी विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में से कुछ घटकों को चुनकर बहुमुखी परिप्रेक्ष्य को विकसित करते हैं और अपना अध्ययन बहुमुखी परिप्रेक्ष्य के आधार पर करते हैं।

शिक्षक अस्मिता परिप्रेक्ष्य से जुड़े शोध साहित्य में शिक्षकों की अस्मिता को शिक्षक, शिक्षकीय कार्य तथा शिक्षकों के विकास के व्यापक संदर्भों के साथ विश्लेषित किया जाता है। वर्त्तमान

शैक्षिक शोध साहित्य के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट रूप से उद्घाटित होता है कि शिक्षण केवल संज्ञानात्मक या तकनीकी प्रक्रिया नहीं है बल्कि यह किसी भी शिक्षक के वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विकास के आलोक में शिक्षकीय विकास की उन जटिल प्रक्रियाओं को भी समाविष्ट किए हुए हैं जिन्हें मिलाकर किसी भी शिक्षक की शिक्षकीय अस्मिता विकसित होती है। बहुत से समकालीन विद्वान एवं शिक्षक प्रशिक्षक अध्यापन के लिए शिक्षण के अप्रेंटिसशीप मॉडल के अन्तर्गत शिक्षक अस्मिता के परिप्रेक्ष्य के अध्ययन को प्रस्तुत कर रहे हैं। इसी तरह बहुत सारे विद्वान शिक्षकीय विकास की समूची प्रक्रियाओं एवं शिक्षक के समग्र व्यक्तित्व में शिक्षकीय अस्मिताओं को चिह्नित करते हैं। जिसमें किसी भी शिक्षक का निजी व्यक्तित्व, सामाजिक विकास तथा भावनात्मक विकास शामिल है। ये विद्वान शिक्षकीय विकास को बहुमुखी संदर्भों को भी शिक्षकीय अस्मिता के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण मानते हैं। इसके अलावा विभिन्न विद्वान किसी भी शिक्षक के अस्मिता के परिप्रेक्ष्य के लिए शिक्षक की नस्ल, सांस्कृतिक शक्ति, शैक्षणिक विकास के इतिहास के आलोचनात्मक अध्ययन को भी महत्वपूर्ण मानते हैं। इस बहुपरती एवं सर्वांगीण प्रक्रियाओं पर आधारित शिक्षकीय कार्यों एवं शिक्षकों के व्यवसायिक विकास को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षकों की अस्मिता का जो विश्लेषणात्मक ढाँचा विकसित होता है वे अस्मिता के व्यापक परिप्रेक्ष्य की ओर इशारा करता है जिसमें शिक्षक के व्यक्तित्व के विकास के पूरी तरह निजी पहलुओं से लेकर सामाजिक पहलू एवं प्रक्रियाएँ शामिल हैं जिनके आधार पर किसी भी शिक्षक का पेशेवर विकास हुआ है। उक्त विश्लेषण के आधार पर ऐसा कहा जा सकता है कि शिक्षकों के अस्मिता का परिप्रेक्ष्य स्थूल, कठोर या निश्चित ढर्रे पर चलनेवाली प्रक्रिया नहीं है बल्कि यह बहुत ही लचीली गतिशील प्रक्रिया है जो कि स्वयं में प्रक्रिया और उत्पाद दोनों है। इस प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में किसी भी व्यक्ति के वर्त्तमान में व्याप्त विभिन्न व्यक्तिगत, सामाजिक, व्यवसायिक एवं उनका ऐतिहासिक विकास शामिल है। शिक्षकीय अस्मिता का परिप्रेक्ष्य कई मायनों में एक राजनीतिक कार्ययोजना एवं एक दार्शनिक संरचना भी है जो कि एक विशिष्ट सामाजिक परिवेश में स्थापित है तथा केवल पारंपारिक मनोविज्ञान पर आधारित नहीं है। यह परिप्रेक्ष्य शिक्षक की भूमिकाओं के अन्तर को स्पष्ट रूप से स्थापित करता है लेकिन शिक्षक को अपने 'स्वयं' से अलग नहीं करता।

शिक्षक अस्मिता का परिप्रेक्ष्य यह पद्धतिगत दर्पण भी है जिसके द्वारा किसी भी शिक्षक के शिक्षकीय विकास का अध्ययन किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत हम शिक्षकीय विकास के सूक्ष्म और स्थूल पहलुओं को समझ सकते हैं और शिक्षकों के विषयगत समझ एवं शिक्षा शास्त्रीय समझ के साथ-साथ उनके वैयक्तिक योगदान का भी अध्ययन कर सकते हैं। इस तरह से हम शिक्षकीय अस्मिता के परिप्रेक्ष्य को शोध ढाँचे के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं जिसके

तहत शिक्षक के व्यक्तित्व का शैक्षणिक कार्य एवं सामाजिक संदर्भों में विश्लेषण किया जा सकता है और यह समझा जा सकता है कि उक्त शिक्षक या शिक्षिका अपने विचारों की संरचना किन आधारों पर कर रहे हैं। इन आधारों में कितनी निरंतरता और किस तरह का बदलाव है। विचारों का यह विकास शिक्षकों के व्यक्तिगत, पेशेवर सामाजिक सभी तरह के संदर्भों में समझा जा सकता है।

उदाहरण के लिए शिक्षकों की अस्मिता के आधार पर यह अध्ययन किया जा सकता है कि किसी भी शिक्षक की प्राथमिकताएँ, मुख्य सरोकार, महत्वपूर्ण एवं गौण लक्ष्य किस तरह से निर्धारित हो रहे हैं तथा उनकी शिक्षकीय अस्मिता समय के साथ किस तरह से परिवर्तित हो रहे हैं।

शिक्षक अस्मिता के परिप्रेक्ष्य को एक शिक्षाशास्त्रीय उपकरण के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है जिसके द्वारा किसी भी शिक्षक प्रशिक्षक द्वारा शिक्षकीय विकास की व्यापक रणनीति तैयार की जा सकती है। शिक्षक अस्मिता के परिप्रेक्ष्य की मदद से किसी भी शैक्षणिक कार्यक्रम में यह संभावना देखी जा सकती है कि वे सेवा–पूर्व शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रशिक्षणरत प्रशिक्षु–शिक्षकों के अपने विद्यालयीय अनुभवों को आधार बनाकर अपने शिक्षकीय विकास की प्रक्रिया को और अधिक सचेतन, स्वाभाविक, शोधपरक और सूक्ष्म बना सके जिससे कि उनका व्यवसायिक विकास धरातल पर हो और वे अत्यन्त ही वस्तुपरक विश्लेषणात्मक एवं शोधपरक होते हुए भी जमीनी हकीकत से दूर नहीं हो।

उपरोक्त पृष्ठभूमि के आधार पर हम शिक्षक अस्मिता के परिप्रेक्ष्य को निम्न शीर्षकों में बाँट कर समझ सकते हैं और ये शीर्षक अपने आप में न तो एकांतिक है और न ही अलग–अलग। अध्ययन की सुविधा के लिए ही इनका विभाजन किया जा रहा है:–

1. शिक्षकों की अस्मिता का जटिल व क्रमिक सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य।
2. ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के आधार पर उन्मुखीकरण का सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य।
3. शिक्षक अस्मिता का आख्यात्मक सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य।
4. शिक्षक अस्मिता का जटिल एवं क्रमिक सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य।

यह परिप्रेक्ष्य मुख्य रूप से इस सिद्धान्त पर केंद्रित है कि किसी भी शिक्षक की अस्मिता स्थिर या रेखीय नहीं है बल्कि यह लचीली होने के साथ बहुमुखी, बहुपरती एवं बहुआयामी भी है। इसलिए यह जटिल व क्रमिक रूप से विकसित होती है। इस तथ्य को समझने के लिए हम किसी

भी शिक्षक/शिक्षिका के व्यक्तिगत या शिक्षकीय जीवन को उदाहरण के रूप में देख सकते हैं।

यह आकलन हमें यह समझाने में सहायक होगा कि किसी भी शिक्षक की अस्मिता एकल तत्व पर आधारित नहीं होती और न ही वे दूसरी लघु और दीर्घ अवधि की अस्मिताओं या उप–अस्मिताओं से भिन्न होती है। उदाहरण के लिए कोई भी शिक्षक/शिक्षिका सुनिश्चित रूप से यह दावा नहीं कर सकते कि वे ताउम्र एक ही विषय पढ़ायेंगे। शिक्षक या शिक्षिकाओं के शैक्षणिक संस्थान की परिस्थितियों के आलोक में उनकी अस्मिता परिवर्तनीय है। अतः इस परिप्रेक्ष्य के अनुसार जटिलता व क्रमिकता के आधार पर ही शिक्षकों की अस्मिता को वास्तविक रूप से समझा जा सकता है।

ऐतिहासिक प्रक्रियाओं के आधार पर उन्मुखीकरण का परिप्रेक्ष्य

यह परिप्रेक्ष्य मूलतः इस तथ्य पर आधारित है कि शिक्षकीय अस्मिता संदर्भित और गतिशील होने के साथ–साथ ऐतिहासिक रूप से निर्मित और पुनःनिर्मित होती है। इसके ऐतिहासिक विकास के पीछे कई कारक होते हैं जो अस्मिता के विशिष्ट रूप से विकसित होने में सहायक होते हैं। यह कारक व्यक्तिगत और सार्वजनिक दोनों तरह के हो सकते हैं जिनके प्रभाव शिक्षक/शिक्षिका की कार्यशैली पर चिरस्थायी या अत्यंत ही क्षणिक हो सकते है। इसलिए कई विद्वानों का मानना है कि किसी भी शिक्षक की अस्मिता को समझने या परिभाषित करने के लिए उसके जीवन–वृत का ऐतिहासिक रूप से समझना जरूरी है। किसी भी शिक्षक की अपेक्षित और वास्तविक अस्मिता के बीच की सही स्थिति समझने के लिए उस शिक्षक के भूत, वर्त्तमान और भविष्य का अध्ययन जरूरी है।

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री Bernstein (2000) का मानना है कि ‘‘किसी भी व्यक्ति की पूर्वव्यापी और भावी अस्मिताएँ भिन्न हो सकती है क्योंकि शिक्षक की वर्त्तमान अस्मिता उसके पूर्व के अनुभवों एवं कार्यों पर आधारित होगी जबकि भावी अस्मिता अपेक्षाओं और लक्ष्यों के आधार पर विकसित होगी। Sfard and Prusak (2005) का भी ये मानना है कि अस्मिताओं में सामयिक विविधता रहती है तथा समय–समय पर घटित होनेवाली, विभिन्न घटनाएँ, क्रियाएँ तथा प्रतिक्रियाएँ अस्मिता की संरचना को निश्चित रूप से प्रभावित करती है। वे भी वास्तविक और अपेक्षित अस्मिताओं के अंतर को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार वास्तविक अस्मिता अनुभवजन्य होती है जबकि भविष्य की अस्मिता अपेक्षाओं पर आधारित रहती है।’’

शिक्षक अस्मिता का आख्यात्मक सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य

आख्यान या वृतांत आधारित परिप्रेक्ष्य इस मान्यता पर आधारित है कि शिक्षकों की असली अस्मिता जिसे वे अपने लिए निर्धारित करते हैं, उनके अपने अनुभवों को आख्यान एवं वृतांत के रूप में अभिव्यक्त करने से पता चलता है। ऐसे बयान अक्सर शिक्षकों द्वारा औपचारिक या

अनौपचारिक मंचों पर विभिन्न भूमिकाओं का निर्वहन करते हुए दिए जाते हैं जैसे सेवाकालीन प्रशिक्षण शिविर, सेमिनार, संगोष्ठी, शिक्षक–समूहों की बैठकें इत्यादि।

इस परिप्रेक्ष्य के अनुसार शिक्षक की कक्षागत अस्मिता बहुत–ही सीमित नियंत्रित और निर्देशित व औपचारिक होती है, जिसके आधार पर आप शिक्षकों की वास्तविक अस्मिताओं का पता नहीं लगा सकते। अतः इस कार्य के लिए वृत्तांत या आख्यान पद्धति ही सबसे बेहतर प्रतीत होती है।

क्रियाकलाप–1

एक प्रशिक्षु–शिक्षक कौन–कौन सी अस्मिता धारण करते हैं? सूचीबद्ध करें।

क्रियाकलाप–2

अपने साथी प्रशिक्षु शिक्षकों की विभिन्न अस्मिताओं का आपस में चर्चा करें।

शिक्षक व्यवहार

शिक्षक विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न संदर्भों में अनेक प्रकार के कार्य करता है। वह विद्यालय की विभिन्न क्रियाओं में भाग लेता है। शिक्षक की इन सभी क्रियाओं को एक सामान्य वर्ग में रखा जा सकता है। शिक्षक के व्यवहार के बारे में कुछ विद्वानों ने अपने विचार प्रस्तुत किये हैं:–

- ''शैक्षिक व्यवहार से तात्पर्य व्यक्ति की उन सभी क्रियाओं तथा व्यवहार से है जो किसी शिक्षक के करने योग्य मानी जाती है। विशेष रूप से वे क्रियाएँ जो दूसरों के सीखने में निर्देशन एवं मार्गदर्शन से सम्बन्धित है।'' – रेयन्स
- ''शिक्षक व्यवहार के अन्तर्गत शिक्षक की वह क्रियाएँ आती है जो वह विद्यार्थियों के सीखने में उन्नति व वृद्धि करने हेतु विशेष रूप से कक्षा में करता है।'' – म्यूएक्स तथा स्मिथ
- कक्षा में शिक्षण के अन्तर्गत शिक्षक विद्यार्थियों का अवलोकन करता हैं उनकी भावनाओं की अनुभूति करता है, विषय–वस्तु प्रस्तुत करता है। अतः यह एक शाब्दिक व्यवहार है। शिक्षक के चेहरे के हाव–भाव अशाब्दिक व्यवहार है।

अतः उपरोक्त से स्पष्ट होता है कि शिक्षक व्यवहार एक सामाजिक व्यवहार है और सापेक्षिक भी है।यह परिस्थितिजन्य तथ्यों तथा शिक्षा की वैयक्तिक विशेषता का कार्यकारी रूप है। शिक्षक का व्यवहार जो कुछ भी होता है उस पर बाह्य परिस्थितियों तथा शिक्षक की वैयक्तिक विशेषताओं का प्रभाव पड़ता है तथा इन दोनों के पारस्परिक क्रिया–प्रतिक्रिया का परिणाम ही शिक्षक व्यवहार कहलाता है।

मैकडोनाल्ड के अनुसार:- शिक्षक व्यवहार = $\frac{\text{शिक्षक संबंधी चर}}{\text{विद्यार्थी संबंधी चर}}$

शिक्षक व्यावहार के तीन कारक मुख्य हैं:- (1) शिक्षक की विशेषताएँ (2) परिस्थिति (3) अन्त:क्रिया तथा पारस्परिक निर्भरता।

धारणा

भूमिका: एक शिक्षक को अपनी अस्मिता को पेशेवर अपेक्षाओं के अनुरूप विकसित करने हेतु अपनी धारणाओं, चिन्तन-प्रक्रिया एवं व्यवहार को समझना होता है। एक शिक्षक की धारणा उसके स्वयं एवं पेशे के प्रति उसकी अभिमुख्ता को प्रतिबिम्बित करती है। वह अपनी चिन्तन-प्रक्रिया के द्वारा विषयगत-ज्ञान एवं तदनुरूप शिक्षणशास्त्रीय प्रक्रिया को अपनाता है। उसके व्यवहार उसकी चिन्तन-प्रक्रिया से निर्धारित होती है।

एक शिक्षक को अपनी अस्मिता के प्रति सजगता तभी हासिल होगी जब वह अपनी धारण एवं चिन्तन-प्रक्रिया के विभिन्न आयामों को समझेगा और उनमें अपेक्षानुरूप बदलाब हेतु तत्पर होगा। शिक्षकों की धारणा एवं चिन्तन-प्रक्रिया के संबंध में निम्नलिखित तथ्य द्रष्टव्य है।

कोई ऐसा विचार या बात आदि के प्रमाण न होते हुए भी जिसे सत्य मान लिया है उसे धारणा कहा जाता है। रेयन्स ने शिक्षक के व्यवहार की निम्नलिखित धारणाएँ दी है:-

i. शिक्षक व्यवहार में विश्वसनीयता होती है।
ii. शिक्षक व्यवहार में प्रतिक्रियाओं की संख्या सीमित होती है।
iii. शिक्षक व्यवहार निश्चित न होकर सदैव सम्भावित होता है।
iv. शिक्षक व्यवहार प्रत्येक शिक्षक की वैयक्तिक विशेषताओं का क्रियात्मक रूप होता है।
v. शिक्षक व्यवहार अपनी परिस्थितियों की सामान्य विशेषताओं का क्रियात्मक रूप है।
vi. शिक्षक व्यवहार विशिष्ट परिस्थिति का जिसमें वह घटित होता है का क्रियात्मक रूप है।
vii. शिक्षक व्यवहार का गुणात्मक तथा परिमाणात्मक वर्गीकरण संभव है।

चिन्तन

चिन्तन विचार करने की वह मानसिक प्रक्रिया है, जो किसी समस्या के कारण उत्पन्न होती है और समस्या के अन्त तक चलती है। चिंतन के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए विद्वानों के द्वारा अपने विचार व्यक्त किये गये हैं।

- ''चिन्तन मानसिक क्रिया का ज्ञानात्मक पहलू है या मन की बातों से सम्बन्धित मानसिक क्रिया है।'' – **रॉस**
- ''चिन्तन शब्द का प्रयोग उस क्रिया के लिए किया जाता है जिसमें श्रृंखलाबद्ध विचार किसी लक्ष्य या उद्देश्य की ओर अविराम गति से प्रवाहित होता है।'' – **वेलेन्टाइन**
- ''चिन्तन इच्छा सम्बन्धी प्रक्रिया है, जो किसी असन्तोष के कारण आरंभ होती है और प्रयास एवं त्रुटि के आधार पर चलती हुई उस अन्तिम स्थिति पर पहुँच जाती है जो इच्छा को सन्तुष्ट करती है।'' – **रायबर्न**

अतः यह स्पष्ट होता है कि चिन्तन की क्रिया मानसिक क्रिया का ज्ञानात्मक मार्ग है। इसका एक विशेष उद्देश्य होता है।

अध्यापक के धारणा, चिन्तन–प्रक्रिया एवं व्यवहार को निम्नलिखित तीन आयामों में बॉटकर समझा जा सकता है

i. **संज्ञानात्मक** – संज्ञानात्मक आयाम के अन्तर्गत उसके सोचने, सृर्जनात्मकता, नवीनीकरण, समस्या समाधान, सम्प्रेषण, डिजिटल तकनीकी में बदलाव हो तथा उपरोक्त की समझ होनी चाहिए।
ii. **अन्तरावैयाक्तिक/इन्टरापर्सनल** इन्टरापर्सनल आयाम के अन्तर्गत चिन्तनशील विचार, व्यक्तिगत क्षमता को समझ कर उसे आज की आवश्यकता के अनुसार बदलना चाहिए।
iii. **अन्तर्वैयक्तिक/इन्टरपर्सनल** – इन्टरपर्सनल आयाम के अन्तर्गत स्थानीय, राष्ट्रीय, एवं वैश्विक नागरिक के रूप अपनी भूमिका को पहचानने एवं एवं सामाजिक उत्तरदायित्व के तहत एक सहयोगी के रूप में स्वयं को तैयार करे और इनके बारे में अपनी एवं प्रशिक्षुओं की समझ को बढ़ाये।

विद्यालय संस्कृति एवं शिक्षक के रूप में अपनी भूमिका की पहचान तथा इसके चुनौतियों की समझ

'विधालय संस्कृति' शब्द का प्रयोग विद्यालयी परिप्रेक्ष्य में, विद्यालयी समुदाय के अंगों यथा– विद्यार्थी, शिक्षक, अभिभावक, प्रशासनिक इकाइयों इत्यादि के द्वारा अभिव्यक्त धारणा, विश्वास, परम्परा एवं कार्यशैली के समाहित सम्पूर्ण स्वरूप के संदर्भ में किया जाता है।

ये धारणाएँ, विश्वास, परम्परा एवं कार्यशैली ही किसी विद्यालय को उसका स्वरूप प्रदान करती है एवं आसपास के वातावरण से अंतःक्रिया (Intraction) कर एक वृहत् विद्यालयी परम्परा को उद्घाटित करती है।

विद्यालय संस्कृति उसके द्वारा किए गए कार्यों में परिलक्षित होती है एवं उस विद्यालय के अंगो यथा- विद्यार्थी, शिक्षक एवं शिक्षण-अधिगम की वस्तुस्थिति एवं सामाजिक सरोकारों की दशा और दिशा तय करती है।

'विद्यालय संस्कृति' के आयामों को समझ पाना इतनी सरल प्रक्रिया नहीं है। विद्यालय समुदाय के सदस्यों की चेतना में उनकी धारणाओं, विश्वास, परम्परा एवं कार्यशैली का समान चित्रण एवं उसकी समझ का होना, अथवा विद्यालय समुदाय के सदस्यों का व्यवहार एक परिस्थिति में एक समान होना अपने आप में एक पहेली है। लेकिन अगर आप उस समुदाय का करीबी अवलोकन करेंगे तो संस्कृति के पहलुओं को उजागर कर सकेंगे।

विद्यालय संस्कृति के आयाम

'विद्यालय संस्कृति' के ग्राह्य आयाम हैः- 1. मौखिक एवं लिखित (Verbal), 2. व्यवहारिक (Behavioural), 3. दृश्य (visual)

1. मौखिक आयाम/लिखित आयाम

विद्यालय-संस्कृति का ये आयाम उसके 'ध्येय', motto विद्यालय उद्देश्य-कथन (Statement of purpose) एवं उसके निर्धारित लक्ष्यों (जो लिखित अथवा परम्परा) से उद्घाटित होता है।

2. व्यावहारिक आयाम (Behavioural)

विद्यालयीय प्रक्रिया, समारोह, नियम-कानून, पुरस्कार, दण्ड, संरचना एवं विद्यालयीय पाठ्यचर्या के माध्यम से हम किसी विद्यालय संस्कृति के व्यवहारिक आयाम को समझ सकते हैं।

3. दृश्य-आयाम (Visual)

विद्यालय संस्कृति का यह आयाम उसके प्रतीक चिन्ह (logo), वेश-भूषा, व्याप्त सुविधाएँ एवं उनके प्रतिमाणों से उजागर होता है।

शिक्षक के रूप में अपनी भूमिका की पहचान तथा उसके चुनौतियों की समझ

एक शिक्षक को अपनी भूमिका मौजूदा विद्यालयी संस्कृति तथा परंपराओं में तय करनी होती है, जहां वह कार्य करता है। शिक्षक भूमिका एवं चुनौतियों को प्रभावित करनेवाले निम्नलिखित चर उल्लेखनीय हैं-

शिक्षक भूमिका एवं चुनौतियों के चर

1. **शिक्षक निश्चितता (Teacher Certainty)**

यह चर शिक्षक के अनुदेशात्मक अभ्यास की निश्चित्ता से जुड़ा हुआ है यह विद्यालय संस्कृति एवं अनुदेशात्मक अभ्यास के बीच का संबंध है।

2. **शिक्षक सामंजस्य (Teacher Cohesiveness)**

यह विद्यालय संस्कृति का चर शिक्षक के अपने विद्यालय के प्रति आत्मीयता एवं समायोजन का कारक है। यह शिक्षक कार्य–कुशलता का एक महत्वपूर्ण अंग है।

3. **शिक्षक सहभागिता (Teacher Collaboration)**

यह शिक्षक की अपने विद्यालय एवं उसके सहभागी कार्यों (Shared work) को निर्धारित करनेवाले विद्यालय संस्कृति में विद्यमान कारक, से संबंधित है, जो कि शिक्षक को एक सहभागी शिक्षक बनाता है।

4. **शिक्षक द्वंद्व (Teacher Dillemmas)**

विद्यालय संस्कृति में व्याप्त ऐसे तत्व जो शिक्षकों के लिए असन्तोष का कारक है, एवं उसके निवारण की समझ का विकसित होना आवश्यक है।

5. **शिक्षक मूल्यांकन (Teacher Evaluation)**

यह विद्यालय में शिक्षकों के होने वाले मूल्यांकन एवं अनुश्रवण के माध्यम से जनित विद्यालय संस्कृति से संबंधित है।

6. **शिक्षक लक्ष्य निर्धारण (Faculty Goal setting)**

विद्यालय संस्कृति के माध्यम से विद्यालयीय ध्येय (Motto) एवं निर्धारित लक्ष्यों को शिक्षकों को आत्मसात करना एवं उसके उत्तरोत्तर विकास में योगदान देना।

7. **विद्यार्थी व्यवहार प्रबंधन (Managing Student Behaviour)**

यह विद्यालय में व्याप्त नियम–कानून एवं विद्यार्थी अनुपालन के शिक्षक प्रबंधन द्वारा निर्मित विद्यालय संस्कृति की ओर इंगित करता है।

8. **शिक्षक अधिगम अवसर (Teacher Learning opportunities)**

शिक्षकों के सतत् वृतिक विकास के लिए विद्यालय संस्कृति में व्याप्त कारक है। इन अवसरों का उपयुक्त लाभ शिक्षकों की शैक्षनिक दक्षता सुनिश्चित करता है।

समेकन

उपरोक्त वर्णित चर विद्यालयी संस्कृति को प्रभावित करती है जहां एक शिक्षक कार्य करता है। एक शिक्षक यदि मौजूदा चुनौतियों को शिक्षण–अधिगम अवसर के रूप में बदलने में सक्षम होता है तो विद्यालयी–संस्कृति में अपेक्षानुरूप सकारात्मक बदलाव होता है। जरूरत है चुनौतियों की समझ विकसित कर अपनी भूमिका को पुन:परिभाषित करने की ताकि शिक्षक अपनी अस्मिता के प्रति सजग रहें।

इकाई–3

अपने कार्यों तथा जीवन उद्देश्यों की समझ

- अपने जीवन लक्ष्यों को विकसित करना तथा उनके भौतिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य को समझना।
- स्वयं के बारे में अपने सहकर्मियों, विद्यार्थियों, समुदाय आदि की धारणाओं को जानना।
- दैनिक रिफ्लेक्टिव डायरी लिखना और उसको स्वयं को समझने के लिए प्रयोग करना।
- कार्यशाला में प्रेरणादायी कहानियों, फिल्मों आदि पर चर्चा होना।
- अपनी खूबी को पहचानना, उसे प्रदर्शित करना तथा शिक्षण में प्रयोग करने के तरीकों को समझना।

अपने कार्यों तथा जीवन उद्देश्यों की समझ

भूमिका

पूर्व के अध्यायों में हमने एक पेशेवर के रूप में अपने स्व तथा अस्मिता को विभिन्न आयामों से समझने का प्रयास किया। ज्यादातर प्रसंगों में हमने विषयवस्तु के सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य को जाना है। एक पेशेवर शिक्षक को सिद्धान्तों का व्यवहारिक आयाम देना नितांत ही आवश्यक है। शिक्षाशास्त्रीय संस्थाओं को अपने कार्यशैली एवं व्यक्तित्व के हिस्से के रूप में रूपान्तरित करना अपनी दक्षता एवं कौशलों के विकास की अनिवार्य शर्त है। इस अध्याय में हम एक शिक्षक के रूप में अपने जीवन लक्ष्यों को विकसित करने पर ध्यान केन्द्रित करेंगे एवं साथ–ही उनके भौतिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्यों की पड़ताल करेंगे। एक शिक्षक को अपने द्वारा रोजाना संपादित किये जानेवाले कार्यों से अपने जीवन लक्ष्यों की संगति की कला आनी चाहिए तभी वह अपने कार्यों का विश्लेषण अपेक्षानुरूप कर पाएगा। अपने जीवन मूल्यों, लक्ष्यों एवं विश्वासों को कार्यरूप में परिणत करने के उपायों पर हम इस अध्याय में चर्चा करेंगे। में:–

पूर्ववर्ती अध्यायों में हमने बहुआयामी व्यक्तित्व की बात की एवं अपनी अस्मिता के विभिन्न पहलुओं की पड़ताल की। इस परिप्रेक्ष्य में एक शिक्षक की भूमिका एवं कार्य–दायित्व दोहरी हो जाती है। एक व्यक्ति के रूप में निर्धारित जीवन लक्ष्यों को शिक्षकीय अस्मिता के साथ संगति बैठाना तथा तद्नुरूप जीवन लक्ष्यों को विकसित करना कई दफा चुनौतिपूर्ण लगता है परंतु, शिक्षकीय दायित्वों के सम्यक निर्वहन हेतु स्थापित मूल्यों, विचारों एवं कौशलों को जब व्यावहारिक

रूप में दैनिक क्रियाकलाप का हिस्सा बना लिया जाता है तब उन दायित्वों का निर्वहन आसान हो जाता है। इसलिए सबसे पहले तो हमें यह जानना होगा कि वे कौन से लक्ष्य हों जिसे अपने जीवन में उतारने हेतु चयन किया जाए एवं उन जीवन-मूल्यों के भौतिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य क्या है? शिक्षाशास्त्रीय मीमांसाओं में वो कौन से मूल्यों की वकालत की गयी है जो शिक्षकीय दायित्व को सारगर्भित बनाते हैं।

सबसे पहली बात कि 'शिक्षण एक पेशा है' इस परिप्रेक्ष्य में एक शिक्षक को अपना विकास एक पेशेवर के रूप में करना होता है। ''शिक्षण एक पेशा है और शिक्षक-शिक्षा, शिक्षकों के पेशेवर तैयारी की एक प्रक्रिया है (NCFTE-2009)। जैसा हम जानते हैं कि पेशा का मतलब ज्ञान की उस संगठित रचना (शिक्षक शिक्षा पर आधारित ज्ञान) से है जिसमें कार्य क्षेत्र का व्यवहारिक अनुभव एक समुचित अवधि में औपचारिक एवं श्रमसाध्य पेशेवर प्रशिक्षण के जरिये हासिल हो एवं उस पेशे से संबंधित नैतिक मूल्यों की संहिता से बंधा हुआ हो (NCFTE-2009)। एक शिक्षक का जीवन लक्ष्य उसके पेशे से जुड़े शैक्षिक सिद्धांतों की ज्ञान एवं समझ, सीखने-सीखाने से संबंधित व्यवहारिक कौशलों और वृत्तिक एवं मूल्यों को हासिल करने की ओर उन्मुख होना।

भारतीय संदर्भ में शिक्षा के वही लक्ष्य हैं जो हमारे संविधान के हैं। समानता, स्वतंत्रता एवं बंधुता हमारे मूलभूत मानवीय मूल्य हैं और संविधान सम्मत एक शिक्षक की निरंतर यह कोशिश होनी चाहिए कि अपने जीवन मूल्यों को, मानवीय मूल्यों से एकाकार करे एवं स्थानीय आवश्यकता एवं आकांक्षाओं के अनुरूप लचीला भी बनाये। जैसा हम जानते हैं मानव जीवन के तीन पक्ष हैं – भौतिक पक्ष, भावनात्मक पक्ष और आध्यात्मिक पक्ष। सतही तौर पर ये पक्ष भले अलग-अलग दिखाई पड़े परंतु जीवन की संपूर्णता के दृष्टिकोण से ये परस्पर जुड़े हुए हैं तथा एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। मानव-जीवन इन तीनों पहलुओं का समाहार है। एक शिक्षक भी जीवन के इन तीनों पक्षों से प्रभावित होता है तथा अपने जीवन लक्ष्यों एवं कार्यदायित्व के निर्धारण एवं निर्वहन में इनकी अनदेखी नहीं कर पाता है।

मानव जीवन का विकास भी स्थान और काल के सापेक्ष ही विकसित होते हैं और तदनुरूप जीवन लक्ष्य भी निर्मित होते रहते हैं। किसी समय में शिक्षकों का जीवन लक्ष्य गुरूकुल परंपरा से अनुप्राणित संचालित होता रहा, तो आज आधुनिक युगीन मूल्यों से शिक्षकों का जीवन-लक्ष्य और कार्य-दायित्व निर्धारित हो रहा है। इसी प्रकार स्थान और परिस्थितियाँ भी शिक्षकीय भूमिका को निर्देशित करते हैं और तद्नुरूप शिक्षक के जीवन लक्ष्य तय होते रहते हैं।

मानवीय जीवन लक्ष्यों पर विभिन्न मनोवैज्ञानिकों, दार्शनिकों, समाज-शास्त्रियों ने विभिन्न दृष्टिकोण से विचार किया। जहाँ एक तरफ चार्वाक ने 'यावत् जीवेत् सुखम जीवेत्' का उद्घोष करके

भोगवाद को ही जीवन का ध्येय बताने की चेष्टा की, वहीं अध्यात्मवादियों ने जीवन को मोक्ष का साधन बतलाया। आधुनिक समय में जीवन लक्ष्यों से संबंधित मामलों ने आवश्यकता आधारित जीवन लक्ष्यों की बात की जिसमें जैविकीय आवश्यकताओं से भावनात्मक आवश्यकताओं तक की बात की।

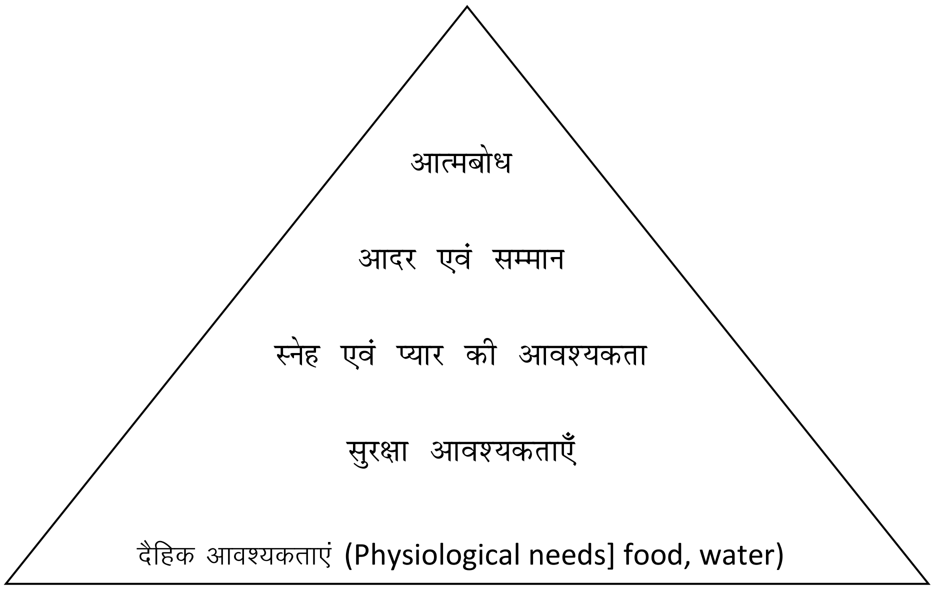

अध्यापक की भी अवधारणा को विद्यालय की अवधारणा से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। वर्तमान समय में सरकारी और निजी विद्यालय के बीच का अन्तर साफ नजर आता है। सरकारी विद्यालय का अध्यापक गैर-शैक्षणिक कार्यों में उलझा रहता है। जैसे मतदाता पहचान पत्र बनाना, पशुगणना, जनगणना इत्यादि। आज अध्यापक की स्थिति डंडों के सहारे तनी हुई रस्सी पर चलने वाले खेल में सन्तुलन साधने की कोशिश करने वाले की तरह हो गई हैं।

स्वयं के बारे में अपने सहकर्मियों, विद्यार्थियों, समुदाय की धारणाओं को जानना:-

i. **विश्वसनीय हो** - अपने सहकर्मियों के साथ अध्यापक विश्वसनीय संबंध रखता है तो वह स्वयं के बारे में अपने सहकर्मियों की धारणा जान सकता है।
ii. **अच्छा सुनने वाला** - एक अध्यापक जो बहुत अच्छा सुनने वाला है यानि अपने सहकर्मियों की किसी भी बात को या उनकी समस्या को सुनेगा और समझेगा तो वह अपने साथियों द्वारा अपने बारे में धारणा को जानेगा।
iii. एक अध्यापक जब अपने सहकर्मियों का अधिक-से-अधिक सहयोग करता है, तो जिससे आपस में समझ का बॉण्ड विकसित होता है और एक-दूसरे को समझा जा सकता है।

iv. **सहायता करने के लिए आगे आना** – यदि आप तकनीकी कौशल जानते हैं तो अपने साथियों को तकनीकी कौशल सिखाने के लिए आगे आना चाहिए जिससे आपसी समझ बढ़ेगा।

v. **वास्तविकता** – अपनी और अपने साथियों की वास्तविकता स्वीकार करना चाहिए जिससे अपने साथियों की विचारधारा को अपने आप के बारे में समझना आसान होगा।

विद्यार्थियों का अध्यापक के साथ सीधा संबंध होता है। प्रत्येक विद्यार्थी का अपने अध्यापकों के बारे में अलग-अलग विचारधारा होती है, जैसे – किसी अध्यापक को कोई विद्यार्थी अपना आदर्श मानता है, तो उसकी विचारधारा उस अध्यापक के बारे में सकारात्मक होती है और कुछ अध्यापक के बारे में कुछ विद्यार्थियों की विचारधारा उतनी अच्छी नहीं होती है। अतः अध्यापक अपने बारे में विद्यार्थियों की धारणा जानने के लिए वह बहुत सारी विधि अपना सकता है जो निम्न है:-

i. लोकतांत्रिक वातावरण तैयार करना।
ii. मित्र एवं पथप्रदर्शक के रूप में भूमिका निभाना।
iii. अध्यापक का अपने विषय में पारंगत होना।
iv. विद्यार्थियों के साथ सामान्य बातचीत करना।
v. विद्यार्थियों की व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान करना।
vi. विद्यार्थियों के साथ भावात्मक रूप से जुड़ना।
vii. विद्यार्थियों में सहस्तीत्व की भावना का विकास करना।

अध्यापक अपने समाज के लिए दर्पण का कार्य करता है। वह समाज का आदर्श व्यक्ति होता है, जिससे पूरा समाज बहुत अपेक्षाएँ रखता है। यदि अध्यापक को समुदाय की अपने बारे में धारणा जानना है तो वह बहुत सारे कार्य कर सकता है, जैसे:-

i. समुदाय में अपना चरित्र बनाये रखना।
ii. समुदाय में लोकातंत्रिक भावना विकसित करना जिससे सभी आपस में अपने विचार व्यक्त कर सके।

रिफलेक्टिव डायरी

रिफलेक्टिव डायरी एक अघ्यापक के शैक्षिक व्यवहार को परिलक्षित करने वाला एक व्यक्तिगत दस्तावेज है। एक अघ्यापक अपने कक्षीय व्यवहार तथा उसके सामने आने वाली चुनौतियों का

सामना सफलता पूर्वक किस प्रकार करता है, यह अध्यापक के रिफलेक्टिव डायरी में प्रदर्शित होती है। रिफलेक्टिव डायरी के माध्यम से एक व्यक्ति के व्यक्तित्व की सभी पहलुओं को सीसे आइने की तरह स्पष्ट देखा जा सकता है।

स्वयं को समझने के लिए प्रयोग

अधिगम का उत्तरोतर विकास एवं उसमें प्रगाढ़ता किसी भी प्रशिक्षु शिक्षक अथवा विद्यार्थी की चिन्तन एवं विचार मग्नता पर निर्भर करता है, जो कि वे किसी अधिगम प्रक्रिया एवं उसमें सम्मिलित सामग्री के बारे में चिंतन (Reflection) के लिए प्रकट करते हैं।

रिफलेक्शन अथवा चिन्तन की प्रक्रिया एक तरह से 'चेतन उत्प्रेरण' है। यह प्रक्रिया किसी प्रशिक्षु शिक्षक के विकास के आयाम, विकास में आने वाली बाधाएँ, उसमें प्रयुक्त उपागम, अपने ही अवधारणा को खण्डित करने की क्षमता, एवं विकास पथ पर किए गए त्रुटियों का निवारण करने में कारगर सिद्ध होती है।

रिफलेक्शन (चिन्तन) की प्रक्रिया आत्मविश्वास की बढ़ोत्तरी कर, आत्म-अभिव्यक्ति की ओर अग्रसर करती है। तदोपरांत, वृत्ति, आत्म परिप्रेक्ष्य एवं प्राथमिकता के बदलाव में एक उत्प्रेरक सिद्ध होती है।

स्व-साक्षात्कार - अपनी स्वीकार्यता एवं स्वयं की समझ का होना ही एक भावी सम्पूर्ण शिक्षक सोपानिक उत्तरोत्तर विकास है। इसके अलावा, किसी भी कार्य में रिफलेक्शन अथवा चिन्तन का होना उस कार्य के प्रति खुले-मस्तिष्क (open-mindedness) से अपनी इच्छानुरूप कार्य का उत्तरदायित्व वहन कर, आत्म-अभिप्रेरित अधिगमकर्त्ता बनते हुए, उस कार्य में आलोचनात्मक चिन्तन (critical thinking) एवं तर्कपूर्ण विश्लेषण (Reasoned- Analysis) का समावेषण करना है।

रिफलेक्शन प्रशिक्षु शिक्षक को अपने भावात्मक पक्ष को भी उजागर करने में मदद देता है, जो अन्यथा अधिगम सा प्रतीत होता है। रिफलेक्शन के लिए प्रशिक्षु शिक्षक को ''रिफलेक्टिव डायरी'' लिखने का प्रशिक्षण एवं दक्षता हासिल करना बहुत ही अनिवार्य है जिससे प्रशिक्षु शिक्षक को सिद्धांत एवं व्यवहार के बीच समन्वय स्थापित करने में आसानी हो।

अतएव, ''रिफलेक्टिव डायरी' का प्रशिक्षु शिक्षक की शिक्षा में मुख्य भूमिका है। प्रशिक्षुओं को अपनी शैक्षणिक क्रियाकलापों के प्रति सजग करना है। इसके माध्यम से वह क्या करते हैं? कैसे करते हैं? क्यों करते हैं? जैसे प्रश्नों पर आत्म-चिन्तन कर आने वाली समस्याओं का समाधान अपनी कार्यक्षमताओं का आकलन कर भविष्य के लिए तैयार हो सकते हैं। शिक्षण के कार्यों में

दक्षता, उनकी अपने शिक्षण–विषय की एवं उस विषय का व्यवहारिक एवं सैद्धांतिक पक्षों की समझ बनाने में भी 'रिफ्लेक्टिव डायरी' का महत्वपूर्ण योगदान है। यह एक कौशल है, जिसका विकास कर, परिपोषण एवं मार्जन करने की आवश्यकता है।

कुछ प्रशिक्षु शिक्षक अभ्यास एवं त्रुटि (Trial and Error) के माध्यम से भी अपने अन्दर चेतना का विकास कर रिफ्लेक्शन अथवा चिन्तन को उत्पन्न कर सकते हैं। लेकिन, 'रिफ्लेक्टिव डायरी' का प्रयोग कर के भी प्रशिक्षु शिक्षकों को चिन्तन की क्रिया में प्रशिक्षित किया जा सकता है। 'रिफलेक्टिव डायरी' का प्रयोग, इस चिन्तन विकास को आगे बढ़ाने तथा सीखने–सिखाने की विद्या के रूप में किसी शिक्षक–शिक्षण कार्यक्रम का अभिन्न अंग हो सकता है।

अपनी खूबी को पहचानना

मनुष्य मन का विज्ञान समझना एक टेढ़ी खीर होता है, एक ही नियम या निष्कर्ष सभी व्यक्तियों पर लागू नहीं होता है।

कोटि–कोटि मनुष्यों की भीड़ में भी वह अपने निराले व्यक्तित्व के कारण पहचान लिया जायेगा। यही उसकी विशेषता है, प्रकृति का यह नियम है कि एक मनुष्य की आकृति दूसरे से भिन्न है, आकृति का यह जन्मजात भेद आकृति तक ही सीमित नहीं है, उसके स्वभाव, संस्कार और उसकी प्रवृत्तियों में भी वही असमानता रहती है। चार्ल्स डार्विन ने अपनी पुस्तक "The Origin of the Species" में इसकी पुष्टि भी की है – "No two individual of the same race are quite alike, we may compare millions of faces and each will be distinguished."

एक विद्यार्थी जो भविष्य का अध्यापक है, यह जरूरी है कि वह अपने व्यक्तिगत कलाओं तथा कौशलों की पहचान करे। एक विद्यार्थी जो मनोविज्ञान के सम्प्रत्यों को समझता है, उससे यह भी आशा की जाती है कि मनोवैज्ञानिक सम्प्रत्ययों, रूचि, धारणा, अभिवृत्ति, अभिक्षमता, बुद्धि आदि के बारे में अपना स्वयं का विश्लेषण किस प्रकार करता है।

एक माँ जिस तरह बच्चे को जन्म देती है, उसी तरह एक शिक्षक विद्यार्थी के व्यक्तित्व को बनाने का कार्य करता है। सूचना क्रान्ति के जमाने में भले ही जहाँ कुछ भी इन्टरनेट के जरिये हासिल करना संभव हो गया हो, परन्तु कुछ बातें अभी भी साथ–साथ बैठकर सामूहिकता के साथ–ही सीखना तथा सीखाया जाना बेहतर होगा।

अपनी विशेषताओं को पहचानने के मापदण्ड

i. सीखने के लिए एक सकारात्मक माहौल का निर्माण करना।
ii. सीखने वाले के उद्देश्य को स्पष्ट करना।

iii. सीखने के संसाधनों को संगठित कर उपलब्ध करवाना।
iv. सीखने के बौद्धिक तथा भावनात्मक पक्षों में संतुलन कायम रखना।
v. सीखने वालों के साथ बिना उन पर हावी हुए विचार एवं भावनाओं को साझा करना।
vi. अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं, यथा – रूचि, ध्यान, बुद्धि, विवेक, अभियोग्यता तथा अभिक्षमता को समझना।

प्रेरणादायी कहानियां–

प्ररणादायी कहानियां एक ऐसी विद्या है जो जीवन को एक नयी दिशा प्रदान करती है। ये कहानियां हमें जीवन में ओत-प्रोत करती हैं। कहानियां जीवन का दर्पण हैं जिनसे हमें कर्मो का बोध होता है एवं जो हमारे लक्ष्य प्राप्ति का माध्यम बनता है। माना कि कहानियां काल्पनिक होती हैं पर कल्पना परिस्थितियों के द्वारा ही निर्मित होती हैं।

आइए हम आपको ऐसी कुछ कहानियां सुनाते/दिखाते हैं, जो आपके जीवन को नयी दिशा प्रदान करेगी तथा आपकी सफलता का माध्यम बनेगी। प्रेरणादायक कहानियों का को पढ़ने के लिए निम्नलिखित इंटरनेट लिंक पर जायें।

https://www. Arvindguptatoys.com

https://www. Arvindguptatoys.com/divaswapnahindi.pdf/

शिक्षण में प्रयोग करने के तरीकों को समझना

शिक्षण के अवयवों में शिक्षक, विद्यार्थी, पाठ्यक्रम तथा विधियों का समावेश होता है। शिक्षण एक ज्ञानात्मक के साथ-साथ भावनात्मक तथा क्रियात्मक प्रक्रिया होती है, विद्यार्थी के ज्ञानात्मक पहलुओं के विकास के लिए अध्यापक के व्याख्यान के साथ-साथ, कम्प्यूटर, इन्टरनेट की भूमिका, वर्तमान समय में बहुत ही महत्वपूर्ण हो गयी है, इसलिए एक शिक्षक को इन सभी बिन्दुओं को समझना तथा सीखना होगा।

शिक्षण का एक महत्वपूर्ण आधार विद्यार्थी के विचारों तथा भावनाओं को उस शिक्षण बिन्दु के परिप्रेक्ष्य में परिवर्तित करना भी होता है। चूँकि यह कार्य एक जटिल प्रक्रिया का हिस्सा होता है इसलिए एक विद्यार्थी को इन बारीकियों को अपने व्यक्तिगत विशेषताओं के अनुसार सामंजस्य बनाना होगा, इसके साथ-ही एक विद्यार्थी के समग्र विकास हेतु इन मुख्य बिन्दुओं पर ध्यान देना भी आवश्यक है:-

6E Model

i. Engage (संलग्नता रखना)

ii. Explore (अन्वेषण)

iii. Explain (व्याख्या)

iv. Elaborate (विस्तार)

v. Evaluate (मूल्यांकन)

vi. Enrich (समृद्ध)

इनके साथ-ही कुछ अन्य बिन्दुओं पर पूर्ण ध्यान देना आवश्यक है:-

1. उद्देश्यों का निर्धारण ।
2. पाठ्यक्रम के चयन ।
3. माध्यम के चयन ।
4. शिक्षण सहायक सामग्री निर्माण ।
5. कक्षा की जीवन्तता ।
6. कक्षा का नियंत्रण ।
7. कक्षागत का स्थापन ।
8. कक्षा का लोकतांत्रिक वातावरण ।
9. विद्यार्थियों की प्रतिपुष्टि ।
10. मूल्यांकन ।

"**E- संसाधन** (Websites)"

https://www.Arivindguptatoys.com

संदर्भ सुची

स्वयं की समझ

- एन.सी.ई.आर.टी. मननशील शिक्षक, नर्द दिल्लीः एन.सी.ई.आर.टी.
- श्रीवास्तव, चन्दन (2014) अध्यापक की अस्मिता, उदयपुरः खोजें और जाने पत्रिका, अंक

- **Batra, P. (2005). Voice and Agency of Teachers: A missing link in the National Curriculum Framework. Economic & Political Weekly, Oct.1-7,4347-4356.**

• Beijaard, D, Meijer, P.C. &Verloop, N. (2004). Reconsidering research on teachers" professional identity. Elsevier: Teaching and Teacher Education, 20, pp. 107-128

• David (2004). All Education is Environmental Education The Learning Curve, Issue 226.

• Fulton, John F. (1978). Teachers: made not born?. Belfast: Queen's University of Belfast.

• Krishnamurti, J. (2000). Life Ahead, To parents, teachers and students, Ojai, California, • Omvedt, Gale (2009). Seeking Begumpura, Navanya: New Delhi.

• Pollard, Andrew (2002). Reflective Teaching. Continuum: London.

• Wood, David (2000). Narrating Professional Development: Teacher"s stories as texts for improving practice. Anthropology and Education Quarterly, 31(4), 426- 448.